International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

कश्मीर शैव दर्शन के अनुसार शिव तत्व क्या है और वसु गुप्त के शिव सूत्रों के माध्यम से शिव चेतना को समझना

Mr. Sampath Kumar

Director, Vedic Studies, Gayathri Jyotish Vidya Peeth

अध्ययन का उद्देश्य –

अन्य भारतीय शैव पंथों के विपरीत, कश्मीरी शैववाद प्रतिमा-विज्ञान और कर्मकांडों पर अधिक निर्भर नहीं है, बल्कि एक ऐसे मार्ग का अनुसरण करता है जो एक भिन्न अद्वैतवादी विचारों का संयोजन है जो भगवत्पाद आचार्य शंकर के अद्वैतवाद से भिन्न है। कश्मीरी शैववाद की विशिष्ट पहचान दर्शन, योग और तंत्र परंपराओं के एकीकरण पर आधारित है। यह लेख शिव चेतना को समझने के उद्देश्य से आचार्य वसु गुप्त के शिवसूत्रों का अध्ययन करता है।

आचार्य वसु गुप्त के बारे में

वसु गुप्त (लगभग 800-850 ई.) त्रिक शैव दर्शन के एक महत्वपूर्ण ग्रंथ, शिव सूत्रों के रचयिता थे। कश्मीरी शैव परंपरा प्रत्यभिज्ञा पर केंद्रित है, जिसका अर्थ है प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा पहचान। एक कथा के अनुसार, वसु गुप्त को ये सूत्र शंकरपाल नामक एक चट्टान पर उत्कीर्ण मिले थे। एक अन्य कथा के अनुसार, शिव उनके स्वप्न में प्रकट हुए और उन्हें सुनाकर उन्होंने उसे लिख लिया। वसु गुप्त ने शिव सूत्रों पर एक भाष्य के रूप में स्पंद कारिकाएँ भी लिखीं। उन्होंने बाद के विद्वानों के लिए कश्मीर में एक सांस्कृतिक और धार्मिक पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त किया जो इस्लाम के आगमन तक सदियों तक जारी रहा। उनके प्रमुख शिष्य, भट्ट खल्लाट ने शिव सूत्रों का प्रसार किया। कुछ लोग वसु गुप्त को कश्मीर के अद्वैत शैव दर्शन, या त्रिक शैव दर्शन का संस्थापक मानते हैं।

A) शम्भवोपाय के बारे में और शम्भवोपाय के सूत्र

उपाय शब्द का अर्थ है "परमात्मा तक पहुँचने का साधन"। इस शम्भवोपाय में, चित्त को किसी वस्तु या आधार पर केंद्रित नहीं किया जाता है । बल्कि, चित्त को स्वस्वरूप में लीन होना पड़ता है। वह अपनी प्राकृत भूमिका में कार्य करना बंद कर देता है। चित्त के लुप्त होते से, यहाँ सार्वभौमिक चेतना प्रकाशित होती है, जिसकी विशेषता उसकी पूर्ण स्वतंत्र इच्छा, ज्ञान और कर्म है। यही शिव हैं, हमारा मूल स्वभाव। अब, प्रश्न उठता है, "यदि जीव, जगत और अनुभव करने वालों का मूल स्वभाव स्वयं शिव हैं, तो हम बंधन का अनुभव क्यों करते हैं?"। इसका उत्तर यह है कि अनुभवजन्य व्यक्ति का बंधन आणव मल और कर्म मलों के कारण होता है, जो सीमाकारी स्थितियाँ हैं। ये हमारे मूल स्वभाव के बारे में अज्ञान का कारण बनती हैं। शम्भवोपाय कहता है कि परम सत्य का ज्ञान मन को सभी विचारों से पूरी तरह खाली करने के अभ्यास से प्राप्त होता है। इसे निर्विकल्प अवस्था कहते हैं। यह एक ऐसी अवस्था है जहाँ मन पूरी तरह शांत और निश्चल होते हुए भी सक्रिय और पूर्ण चेतना से भरा हुआ रहता है।

यह उपाय केवल उन साधकों के लिए है जिन्होंने गुरु के अनुग्रह द्वारा अपने चित्त का विकास किये हुए है। इस आध्यात्मिक ऊँचाई पर आसीन होने के लिए, कश्मीर शैव धर्म तीन तरीकों का समर्थन करता है।

1) विश्व चित् प्रतिबिम्बत्वम् या आत्म व्याप्ति - साधक को लगता है कि संपूर्ण ब्रह्मांड उसकी अपनी चेतना के दर्पण में एक प्रतिबिंब है। यह आत्म व्याप्ति या स्वयं का विस्तार है।
2) शिव चैतन्य या शिव व्याप्ति - यह मानसिक संतुलन की स्थिति है। विषय और वस्तु का भेद समाप्त हो जाता है। साधक अनुभव करता है कि वह कोई और नहीं, बल्कि स्वयं भगवान शिव हैं। इसे शाम्भव समाधि कहा जाता है। कश्मीर शैव धर्म इस अवस्था को शिव व्याप्ति कहता है।
3) परमर्षोदय क्रम - इस अवस्था में, व्यक्ति की सीमित "अहं-चेतना" स्वतः ही लुप्त हो जाती है और वह शिव चेतना में स्थापित हो जाता है। यह पूर्ण आनंद या परमानंद की अवस्था है। साधक भगवान शिव की व्यक्तिपरक ऊर्जा के साथ एक हो जाता है। शम्भवोपय में साधक को किसी मंत्र का जाप या किसी विशेष देवता का ध्यान करने की आवश्यकता नहीं होती। गुरु का अनुग्रह और भगवान शिव का अनुग्रह, बोध में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

1) चैतन्यम आत्मा

आचार्य क्षेमराज के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि " चैतन्यम सर्व ज्ञान क्रिया संबंधमयम्, परिपूर्णम्, स्वातंत्र्यम् उच्यते" उक्ति से परिभाषित किया है। इसका अर्थ है कि चैयन्य पूर्ण स्वतंत्रता को दर्शाता है जिसे समस्त ज्ञान और कर्म के मिलन के रूप में समझा जाता है। यह चेतना है। यह चेतना का प्रकाश है जिससे भौतिक प्रकाश भी दिखाई देता है। यह चमकता है और इसके प्रकाश बाकी सब कुछ को चमकाता है। यह सूत्र बताता है कि चेतना ही वास्तविकता है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान, सभी इस चेतना के विभिन्न रूप हैं। आत्मा स्वयं चेतना है जो प्राकृत ज्ञान ज्ञान और तर्क से अछूता है। इसे हमारे अस्तित्व के अंतरतम में पहचाना जाना चाहिए। न तो स्थान, न काल और न ही रूप इसे विभाजित कर सकते हैं, न ही अज्ञान इसे अस्पष्ट कर सकता है क्योंकि ये सभी इस वास्तविकता का हिस्से हैं। केवल शिव ही इच्छा की इस पूर्ण स्वतंत्रता का आनंद लेते हैं और अन्य सभी प्राणी अपने अस्तित्व के लिए उनकी शाश्वत चेतना पर निर्भर हैं। क्षेमराज के अनुसार, वही चेतना सूक्ष्म रूप में सभी प्राणियों में अहंकार, शरीर, बुद्धि, प्राण और सुषुप्ति में अनुभव की जाने वाली अनिर्मित आत्मनिष्ठा के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। यह इंद्रियों और मन की क्रियाशीलता को प्रेरित करती है। इसका अर्थ है कि चेतना के बाहर कोई ऐसा साधन नहीं है जिसके द्वारा चेतना को जाना जा सके। आध्यात्मिक साधना के वे सभी रूप जिनके माध्यम से हम अपने वास्तविक स्वरूप को जानते या अनुभव करते हैं, वे भी अंततः हमारी चेतना का ही प्रतिबिंब हैं। शिव की स्वतंत्र इच्छा ही स्वातंत्र्य और स्वप्रकाश है। अतः कहा गया है कि व्यक्तिगत आत्मा भी चेतना का ही प्रतिबिंब है। यह सदैव विद्यमान है और इसे कोई भी अस्पष्ट नहीं कर सकता।

2) ज्ञानं बंधः

"मैं" और "मेरा" की धारणाओं पर आधारित ज्ञान, सापेक्ष भेदों से युक्त होता है जिन्हें प्रथा कहा जाता है। यह अशुद्धि या माया में निहित है और इसलिए इसे बंधन कहा जाता है। व्यक्ति की इस अशुद्धि को आणव मल कहा जाता है। यह सीमित व्यक्तिगत बोध हमारे वास्तविक स्वरूप को अस्पष्ट कर देता है। संवेदी बोध व्यक्तिगत आत्मा को सीमित व्यक्तित्व के वस्तुनिष्ठ अनुभवों से बाँध देता है हैं। परिणामस्वरूप, सार्वभौमिक चेतना स्वयं को अणु नामक एक बिंदु तक सीमित कर लेती है। व्यक्तिगत और व्यक्तिपरकता के एक बिंदु तक सीमित यह तादात्म्य आत्म-चेतना वास्तविक स्वरूप के अज्ञान या विस्मृति और विभेदित बोध को जन्म देता है जिससे बंधी हुई आत्मा सार्वभौमिक चेतना को भूल जाती है। यह भगवती महामाया का पाश या पाश द्वारा बंधन है, जिससे व्यक्ति अंतर्निहित शिव चेतना को भूल जाता है और सीमित व्यक्तिगत भावना (पशुत्व) से बंधा रहता है। यह सूत्र प्रस्तावित करता है कि एक विवेकशील क्रम का अनुभवजन्य ज्ञान अधूरा है और ऐसा ज्ञान केवल बंधन में परिणत होता है। यह अज्ञान दो कारणों से उत्पन्न होता है। ये हैं 1) आत्मनि अनात्मभिमान, जिसका अर्थ है वास्तविक आत्मा या सार्वभौमिक व्यक्तिपरकता का अज्ञान और 2) अनात्मनि

आत्मभिमान, जिसका अर्थ है सीमित सत्ता को अपना वास्तविक स्वरूप मानना। मन अपने वास्तविक स्वरूप को दीप्ति की स्थिति के बिना अनुभव नहीं कर सकता। आध्यात्मिकता केवल चेतना की शुद्धता के माध्यम से ही अभिव्यक्ति पाती है। रुद्र वे मुक्त आत्माएँ हैं जिनकी आणव मल पूरी तरह से लुप्त हो चुकी है। वे पशुपति हैं, अर्थात् पाश के बंधन से मुक्त देवता। वे व्यक्तियों के कर्मों के अनुसार विश्व व्यवस्था की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं। शिव का सीधा संबंध विलय और अनुग्रह से है। मान्यता (प्रत्यभिज्ञा) स्वयं को शिव चेतना की सर्वव्यापी वास्तविकता में स्थापित करना है। यह केवल शुद्ध ज्ञान है। केवल यही व्यक्ति को पाश के बंधनों से मुक्त कर सकता है। पशु, पहले से विद्यमान शिवचेतना का साक्षात्कार करके साधक पशुपति बन जाता है। जीवात्म का विश्वचेतन में विलय नहीं होता क्योंकि वे शाश्वत रूप से अभिन्न हैं। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि इन्द्रिय-बोध के कारण सीमित ज्ञान ही बंधन है।

3) योनि वर्ग कला शरीरम्

गुहा, ग्रंथि और जगद्योनि जैसे भाव माया को दर्शाने के लिए प्रयुक्त होते हैं। यहाँ इसे योनि या गर्भ इसलिए कहा गया है क्योंकि इसके माध्यम से चेतना जगत का निर्माण करती है और आत्मा का शरीर, सापेक्ष भेदों का बोध कराता है। वर्ग का अर्थ है तत्व समुदाय या माया से संबद्ध तत्वों का वर्ग। ये पाँच कंचुक या आवरण हैं जो निम्नलिखित सीमाएँ लाते हैं।

1) कला प्रभावोत्पादकता के संबंध में सीमाएँ लाती है,
2) विद्या ज्ञान के संबंध में सीमाएँ लाती है,
3) राग इच्छा उत्पन्न करता है,
4) काल समय (भूत, वर्तमान और भविष्य) के संबंध में सीमाएँ लाता है और
5) नियति कारण, स्थान और रूप के संबंध में सीमाएँ लाती है।

इस प्रकार, योनि वर्ग माया के कारण उत्पन्न अशुद्धियों, माया मल का प्रतिनिधित्व करता है।

कला वह माध्यम है जो सत्ताओं के संसार को क्रियाशील औरअलग-अलग वस्तुओं में विभाजित (कलयति) करती है। शरीरम् का अर्थ है रूप। कला शरीरम् का अर्थ है क्रिया के रूप। अतः, यह कर्म मल का प्रतिनिधित्व करता है। आचार्य भट्ट भास्कर के अनुसार मायीय मल आत्मा को स्थूल और सूक्ष्म शरीर प्रदान करती है और भेद या द्वैत का बोध कराती है, परन्तु कर्म मल, कर्म या क्रिया के कारण मन पर छोड़ी गई वासनाओं के कारण जमा होती है। ये दोनों आणव मल से जुड़ी होती हैं जो आधार का काम करती है और बंधन दृढ़ता से स्थापित हो जाता है। यही अवरोहण चाप है। इसे स्वरूप गोपना या स्वरूप निमेष कहते हैं।

यहाँ से जीवन और मन का ब्रह्मांडीय खेल शुरू होता है। मंच पर, अपने मूल स्वरूप को पहचानने का प्रश्न उठता है। यह विकास की प्रक्रिया या आरोहण चाप है। इसे स्वरूप प्रकाशन या स्वरूप उन्मेष कहते हैं।

आचार्य भट्ट भास्कर विरचित शैव वार्तिक के अनुसार, "योनि वर्ग" शब्द परम (अनुत्तर) की चार प्रमुख ऊर्जाओं का प्रतिनिधित्व करता है। ये हैं वामा, ज्येष्ठा, अम्बिका और रौद्री और कला शरीरम् संस्कृत वर्णमाला द्वारा प्रदर्शित चेतना की पचास शक्तियों को संदर्भित करता है। यह वर्णमाला उपर्युक्त चार प्रमुख ऊर्जाओं से उत्पन्न होती है। इसे मात्रिका कहते हैं।

वामा शक्ति आनंद या आनंद की शक्ति है। वह अन्य सभी ऊर्जाओं का स्रोत है। यह सार्वभौमिक चेतना की पारलौकिक जागरूकता (अनख्या) है,जो समय से परे है और सृजन, पालन और संहार की तीनों गतियों में व्यस्त है। वह न केवल विविधता और भ्रम का कारण है, बल्कि वह शिव चेतना की प्रदाता भी है।

ज्येष्ठा वह शक्ति है जो पालन को जन्म देती है। यह वह शक्ति है जिसके माध्यम से व्यक्तियों को शुद्ध ज्ञान और कर्म प्रदान किए जाते हैं, जो सार्वभौमिक चेतना प्राप्त करने में सहायता करते हैं।

रौद्री ज्येष्ठा द्वारा निर्मित प्रबुद्ध जागरूकता की प्रत्याहार शक्ति है। वह मुक्ति के मार्ग को अवरुद्ध करती है और व्यक्ति को भौतिक सुखों में आसक्त रखती है। यह शक्ति व्यक्ति का ध्यान एवं परम लक्ष्य से हटा देती है।
अम्बिका वह शक्ति है जो व्यक्ति को स्थिर स्तर पर जागरूकता बनाए रखने में सक्षम बनाती है। यह शक्ति योगी को निम्न स्तर पर गिरने से रोकती है। साथ ही, यह शक्ति निम्न स्तर के लोगों को उच्च आयामों तक पहुँचने से रोकती है।

4) ज्ञानाधिष्ठानं मात्रिका

ज्ञान के दो रूप हैं। एक परा (श्रेष्ठ) और दूसरा अपरा (निम्न)। यह विभाजन हमारी धारणा के कारण उत्पन्न होता है। जब हम शाश्वत चेतना या वास्तविकता में स्थित हो जाते हैं, तो ज्ञान परा कहलाता है। यह शिव की कृपा से प्राप्त होता है। अपरा वह ज्ञान है जो बंधी हुई आत्मा द्वारा अनुभव किया जाता है।
वह श्रेष्ठ ज्ञान जहाँ सार्वभौमिक चेतना प्रकट होती है, अघोर कहलाता है और दूसरा अपरा जहाँ शिव प्रकृति अस्पष्ट रहती है, घोर कहलाता है। इसका अर्थ है कि प्रत्यभिज्ञा ही एकमात्र अघोर या परा ज्ञान है और बाकी सब केवल घोर है। घोर का ज्ञान हमारे दैनिक जीवन में और आध्यात्मिक पथ में मंत्र शास्त्र के रूप में विद्यमान है।
हम जानते हैं कि वाणी विचार से जुड़ी होती है। वाणी विचार का वाहन है और विचार वाणी का स्रोत है। वे एक साथ खड़े जाते और गिरते हैं। वे चेतना के आंतरिक जगत और भौतिक वस्तुओं के बाहरी जगत दोनों को जोड़ते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस संसार में हम रहते हैं, जिसमें हम एक व्यक्ति के रूप में अनुभूति और संचार करते हैं, वह भाषा की देन है। प्रत्येक जीव में कुछ अनुभूतियाँ होती हैं और वह किसी न किसी रूप में अपने परिवेश से संवाद करता रहता है। यह भी एक भाषा है, हालाँकि हम इसे समझ नहीं सकते।
आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार, वह रचनात्मक जागरूकता (विमर्श) जिसके माध्यम से भाषा सार्थक बनती है और जिसके द्वारा हम अपने विचारों और उद्देश्यों को अपने भीतर और दूसरों के साथ व्यक्त कर सकते हैं, मात्रिका कहलाती है। यह ध्वनियों के रूप में भैरव की शक्ति है। आचार्य क्षेमराज ने अपने "श्री तंत्र षड्भाव" में कहा है कि मात्रिका शिव जी के क्रिया की रचनात्मक शक्ति है। वह वाणी के सर्वोच्च स्तर (परा वाक) पर सुनाई देने वाली अनाहत ध्वनि है, जो पवित्र अक्षरों (मंत्रों) में छिपी शिव भगवान की प्राणशक्ति शक्ति है। वह अघोर शक्ति है जो आंतरिक और बाह्य को जोड़ती है और उन्हें एक रूप में प्रकट करती है। यह मुक्त चेतना का सर्वव्यापी अनुभव है। इसी कारण, उन्हें मातृका मात्रिका मतलब सर्व श्रेष्ट माँ कहा जाता है, जो हमें हमारे शाश्वत पिता के पास ले लेजानेवाली हैं।
मात्रिका विभिन्न देवताओं यानि शक्ति समूह के अधिष्ठात्री हैं। आठ मात्रिकाएँ (अष्टमत्रिका) हैं जिनके आसन या पीठ हमारी इंद्रियाँ हैं। ये देवता संस्कृत वर्णमाला के विभिन्न वर्गों (अ वर्ग से स वर्ग) से संबद्ध हैं। इन ऊर्जाओं की सहायता से हमारे भीतर विचार अभिव्यक्त होते हैं और दूसरों तक संप्रेषित होते हैं, और इच्छित संचार होता है। यह अनुभवजन्य ज्ञान के संचार के लिए एक आधार और साधन के रूप में भी कार्य करता है। उच्च स्तर पर, सभी मंत्र, अक्षरों से बने होते हैं और आठ देवताओं की ऊर्जाएँ अक्षरों से संबद्ध होती हैं। इस प्रकार, हमें यह समझना चाहिए कि मातृका की ऊर्जाएँ शिव के स्वरूप की हैं। वे पवित्र बीजों या नामों (मंत्र मार्ग) के जप का अभ्यास करने वाले साधक में शिव जी कीचेतना स्थापित करती हैं। इस प्रकार, यह सूत्र कहता है कि ज्ञान का आधार मत्रिका है।

5) शक्ति चक्र संधाने विश्व संहारः

जब शिव चेतना पूर्णतः स्थापित हो जाते है, तो सभी भेद विलीन हो जाते हैं। बाह्य अस्तित्व, शरीर और वस्तुओं के रूप में बना रह सकता है, लेकिन वह शिव चेतना की अग्नि के साथ पूर्ण तादात्म्य में सिमट जाता है। कालाग्नि रुद्र की चमक के कारण, वस्तुएँ विलीन हो जाती हैं, और जनसमूह का दृष्टिकोण लुप्त हो जाता है। सब कुछ शिव चेतना के प्रतिबिंब के

रूप में अनुभव किया जाता है। मालिनी विज्ञान तंत्र इसे समावेश या दिव्य चेतना के अवशोषण के रूप में वर्णित करता है। इसे शाक्त साधन के रूप में जाना जाता है। यह सूत्र शाक्तोपाय को शंभवोपाय का सहायक बताता है।
क्षेमराज कहते हैं कि योगी को अपनी चेतना की अनाख्या नामक अकथनीय शक्ति का चिंतन करने का निर्देश दिया जाता है, जो उन ऊर्जाओं के चक्र में व्याप्त है जो अनुभूतियों के ब्रह्मांड का निर्माण, पालन और विनाश करती हैं। इसे शक्ति चक्र कहा जाता है। अनाख्या शक्ति का आह्वान, इस आवरण को हटा देता है। इसे शक्ति चक्र संधान कहा जाता है। यह वस्तुगत जगत को विलीन कर शिव के साथ एकत्व स्थापित करता है। इसे विश्व संहार कहते हैं।
जब भैरव चेतना जागृत होती है, तो संपूर्ण ब्रह्मांड शक्ति की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है। भेदों का बोध, विलीन हो जाता है और योगी अभेद में स्थित हो जाता है। ब्रह्मांड के इस लोप को विश्व संहार कहते हैं। इस संदर्भ में विश्व संहार प्रलय या सृष्टि का अंत नहीं है। यह परम चेतना के साथ पूर्ण मिलन या आत्मस्तता है। जब व्यक्ति यह जान लेता है कि ज्ञान और कर्म की शक्तियों से युक्त यह ब्रह्माण्ड परम (अनुत्तर) से अभिन्न है, तो सभी भेद कालाग्नि रुद्र की अग्नि में विलीन हो जाते हैं। कार्य अपने कारण में स्थित होता है।
यह शाम्भव समावेश है जहाँ शिव और शक्ति का मिलन होता है। जो योगी इस बिंदु को प्राप्त कर लेता है, वह माया के आवरणों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार, यह सूत्र बताता है कि शिव चेतना की प्राप्ति विश्व संहार या शिव चेतना की अग्नि में माया के आवरणों को विलीन करने से होती है। यह शाक्तोपाय द्वारा प्राप्त शाम्भव योग है।

6) जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अभेदे तुर्यभोगसंवित्

चेतना, तुरीय नामक चतुर्थ अवस्था का विस्तार है। यह हमारा वास्तविक स्वरूप है जो योगी की अन्य तीन अवस्थाओं यानि जाग्रत (जागृति), स्वप्न और सुषुप्ति (गहरी निद्रा) को आवृत करता है। इसे सहज समाधि कहते हैं। योगी तीन निम्न अवस्थाओं में क्रियाशील प्रतीत होता है, लेकिन वह बिना किसी विघ्न या रुकावट के तुरीय की चतुर्थ अवस्था में स्थित होता है। आंतरिक प्रकाश की आनंद के अनुभव में स्थायी रूप से निवास करता है। यह सदा विद्यमान अमर आत्मा है, अमर या निरंतर चेतना जो साक्षी के रूप में स्थित है।
हमारी जाग्रत, स्वप्न और गहन निद्रा की अवस्थाएँ किसी न किसी बाधित होती हैं। ये एक साथ सह-अस्तित्व में नहीं रह सकतीं। जाग्रत अवस्था में शरीर, प्राण, इंद्रियाँ और मन पूर्ण रूप से क्रियाशील होते हैं। यह हमें बाह्य और आंतरिक इंद्रियों के माध्यम से संसार का वस्तुनिष्ठ अनुभव प्रदान करता है। स्वप्नावस्था में इंद्रियों का कार्य रुक जाता है, परंतु तन्मात्राएँ कार्यरत रहती हैं। इंद्रियों का कार्य मन स्वयं करता है। अतः, हम मन के अधीन कार्यरत तन्मात्राओं के माध्यम से सभी इंद्रियों का अनुभव करते हैं। व्यक्ति मन की रचना के अनुसार सांसारिक अनुभव का आनंद लेता है। इस अवस्था में केवल प्राण और मन ही क्रियाशील होते हैं। गहन निद्रा में मन भी रुक जाता है। कोई सांसारिक अनुभव नहीं होता। केवल प्राण ही कार्य करता है।
परंतु चौथी अवस्था तुरीय, अन्य तीनों अवस्थाओं में स्वयं को सम्मिलित किए बिना, सदैव विद्यमान रहती है। यह साक्षीभाव से स्थित रहती है। अन्य सभी अवस्थाएँ इस सतत विद्यमान पृष्ठभूमि में बदलती रहती हैं। यह पृष्ठभूमि अपरिवर्तनीय है। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि तुरीय का विस्तार हमें इंद्रियों, तन्मात्राओं और मन से परे ले जाता है। यही हमारा वास्तविक स्वरूप है। सार्वभौमिक चेतना का अनुभव और जहाँ अहंकार का कोई चिह्न नहीं होता।

7) उद्यमो भैरवः

शिव चिदात्मन (चेतना का स्वरूप) हैं। वे सभी प्रकार से पूर्ण और सिद्ध हैं। उद्योग एक परिश्रम है। उन्मेष विस्तार है और उद्यम एक उत्थान है। ये, उन अवस्थाएँ हैं , जो शिव से जुड़ी हैं जब उन्होंने सृष्टि की घटनाओं को उत्पन्न करना चाहा। इस अवस्था में, शिव भैरव बन जाते हैं। वे अभी भी उदासीन हैं। उन्हें अपने परिस्पंद या अपने ही स्पंदन में स्थित कहा जाता

है। वे चेतना के सर्वव्यापी स्वामी हैं। शिव देश-काल के ताने-बाने से परे हैं, लेकिन भैरव सर्वव्यापी हैं। इसका अर्थ है कि अस्तित्व का उद्भव हुआ। अतः, अब भैरव तीन पहलुओं से जुड़े हैं: सृजन, पालन और संहार। वे अपनी अनंत चेतना से सब कुछ भरकर सबका पालन करते हैं और इसे भरण (पालन) कहते हैं। संहार के खेल को रमण (अंदर की ओर ले जाना) कहते हैं। सृजन या उसे बाहर उत्सर्जित करने वाले पहलू को वमन (सृजन) कहते हैं। सब कुछ शिव चेतना के अखंडित निजभास में घटित होता है।

कुछ व्यक्ति बिना किसी ध्यान या मंत्र के जाप किए ही रहस्यमय रूप से शाम्भव समाधि की सर्वोच्च भैरव अवस्था में लीन हो जाते हैं। वे परम की तीव्र अवतरण या कृपा द्वारा आंतरिक रूप से शुद्ध हो चुके होते हैं। क्षेमराज के अनुसार, चेतना का उत्थान सर्वोच्च अंतर्ज्ञान का अचानक उद्भव है जिसे प्रतिभा कहा जाता है। चेतना के अचानक प्रवाह को उच्चालन कहा जाता है। निरंतर विस्तारित होने वाली जागरूकता को विमर्श कहा जाता है और एकता में स्थापना को सामरस्य कहा जाता है। अपने गुरु और परम शिव की कृपा से जागृत होकर, योगी चिंतन की सर्वोच्च अवस्था में लीन हो जाता है जिसे शाम्भव समावेश कहा जाता है और मन से परे उन्मना नामक भाव के स्तर पर रहता है। जब हम एक विचार में लीन होते हैं, तो दूसरा विचार उत्पन्न होता है। दो विचारों के बीच के मिलन को उन्मेश कहा जाता है। यह एक ऐसी अवस्था है जहाँ सभी विचार डूब जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। भैरव एक संक्षिप्त शब्द है। भ अक्षर भरण, पोषण को दर्शाता है। रा अक्षर रमण का प्रतिनिधित्व करता है, जो सृष्टि को ग्रहण करता है, और व अक्षर वमन का प्रतिनिधित्व करता है, जो सृष्टि का पहलू है। आंतरिक उभरती हुई दिव्य चेतना या पारलौकिक सार्वभौमिक चेतना, जिसे हम भैरव कहतें हैं, वह ईश्वर की शक्ति साधकों के अज्ञानता के सभी बंधनों को तोड़ देती है और व्यक्तियों को शाश्वत शिव चेतना में स्थापित करती है।

शाश्वत चेतना में स्थापना केवल इच्छा के उन्मुखीकरण द्वारा होती है। इसे अभेदोपाय के रूप में भी जाना जाता है। इसे अविकल्पक या निर्विकल्पक योग भी कहा जाता है। यह अनुभव तब होता है जब विचार निर्माणों का पूर्ण निरोध हो जाता है। इस योग में, शरीर या प्राण या मन या बुद्धि की कोई सक्रिय प्रक्रिया नहीं होती है। वास्तविकता हमारे भीतर शाश्वत उपस्थिति है। यह सिद्ध है इस प्रकार। अभिनव गुप्त कहते हैं, "न तो किसी चीज़ को अस्वीकार करो, न ही स्वीकार करो, अपने मूल स्वरूप में स्थित रहो, जो एक शाश्वत उपस्थिति है।" इस प्रकार, यह सूत्र आंतरिक भैरव सिद्धांत की बात करता है जिस पर बिना किसी विचार के संपूर्ण ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।

8) ज्ञानम जाग्रत

इंद्रिय बोध से उत्पन्न ज्ञान ही जाग्रत अवस्था है। इंद्रिय बोध बुद्धि, अहंकार और मन का उत्पाद है। ध्वनि, स्पर्श, रूप, स्वाद और गंध की संवेदनाएँ चेतना से संबंधित ज्ञान की शक्तियाँ हैं, और ये शिव के स्वयं पर प्रतिबिम्ब हैं क्योंकि उनकी चेतना से परे कुछ भी अस्तित्व में नहीं है। बाह्य जगत के प्रत्यक्ष संपर्क से प्राप्त समस्त ज्ञान जाग्रत अवस्था की श्रेणी में आता है। परंतु इस प्रकार की इंद्रिय बोध हमें बंधनग्रस्त व्यक्ति (पशु) बनाती है। इसलिए, जाग्रत अवस्था को स्वरूप विस्मृति, अर्थात् स्वयं के वास्तविक स्वरूप का अज्ञान कहा जाता है। इस अवस्था में, सीमित कर्ता या व्यक्ति इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाली संवेदनाओं में पूरी तरह से लीन हो जाता है। इसे पिंडस्थ कहते हैं, जो शरीर या वस्तुगत जगत में स्थित होता है।

मालिनी विज्ञान तंत्र के अनुसार, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की विभिन्न अवस्थाओं का निर्धारण प्रमता, अर्थात् विषय के ज्ञाता के संदर्भ में किया जाना चाहिए। जब जाग्रत अवस्था में वस्तुनिष्ठ पक्ष अधिक प्रबल होता है, तो हम उसे "जाग्रत-जाग्रत" कहते हैं। इसका अर्थ है कि व्यक्ति पूरी तरह से भौतिक जगत में लीन है। योगी इसे अबुद्ध या अजागृत अवस्था कहते हैं। यदि व्यक्ति जाग्रत अवस्था में है, लेकिन उसका मन कुछ हद तक चेतना पर केंद्रित है, तो इसे "जाग्रत-स्वप्न" कहा जाता है। योगी इसे बुद्ध या जागृत अवस्था कहते हैं। जब व्यक्ति जाग्रत अवस्था में होता है और वह आंतरिक रूप

से चेतना पर अधिक केंद्रित होता है और संसार के संबंध में सो जाता है, तो इसे 'जाग्रत-सुषुप्ति' की अवस्था कहते हैं। योगी इसे प्रबुद्ध या सुजागृत अवस्था कहते हैं। जहाँ व्यक्ति जाग्रत अवस्था में होता है, लेकिन आंतरिक रूप से वह शिव चेतना में दृढ़ता से स्थापित होता है और अभेद का अनुभव करता है, उसे जाग्रत-तुरीय कहते हैं। योगी इस अवस्था को सुप्रबुद्ध या पूर्ण जागृत अवस्था कहते हैं। सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से यह जाग्रत ही है। योगी इन चारों अवस्थाओं को पिंडस्थ कहते हैं, अर्थात् भौतिक जगत से संबंधित अवस्थाएँ। ज्ञानी इस अवस्था को सर्वतोभद्र कहते हैं क्योंकि उनके अनुसार संपूर्ण भौतिक जगत ईश्वर की महिमा से परिपूर्ण है और संपूर्ण जगत शिव की अभिव्यक्ति है, संवित् या उनकी चेतना की एक क्रीड़ा है। वे विषय और अविषय दोनों हैं और उनमें कोई अंतर नहीं है।

9) स्वप्नो विकल्पः

मन की स्वतंत्र क्रियाशीलता द्वारा प्राप्त समस्त ज्ञान, जब व्यक्ति बाह्य जगत के प्रत्यक्ष संपर्क में नहीं होता, स्वप्न या स्वप्नावस्था की श्रेणी में आता है। इस अवस्था की सामान्य विशेषताओं को विकल्प कहते हैं। स्वप्न, विकल्पों का एक स्तर है। ये विचार, कल्पनाएँ ,जो अबाहय हैं, अर्थात् बाह्य नहीं, बल्कि स्वप्नदर्शी तक ही सीमित हैं। इस स्तर पर समय, स्थान और गति पूर्णतः भिन्न हैं। इस अवस्था में, मन ही निर्माता और दर्शक दोनों है।

जब स्वप्न जगत विकल्पों द्वारा निर्मित होता है जो अत्यंत स्पष्ट और सटीक प्रतीत होते हैं, तो इस अवस्था को स्वप्न-जागृत कहते हैं। इस अवस्था में अभिविन्यास भौतिक जगत जैसे अथवा भौतिक जगत से भी बेहतर स्पष्ट होगा। योगी इसे गतागत अवस्था कहते हैं। जब स्वप्न अवस्था में, संपूर्ण घटना धुंधली, अस्पष्ट और अव्यवस्थित प्रतीत होती है, तो इस अवस्था को "स्वप्न-स्वप्न" कहते हैं। मालिनी विजय तंत्र इस अवस्था को सुविक्षिप्त कहता है क्योंकि स्वप्न की घटना अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त होती है। व्यक्ति की शांति छीन जाती है और नींद में खलल पड़ता है। जब स्वप्नावस्था में स्वप्नदृष्टा अर्थात स्वप्न के विषयों के बीच एक स्पष्ट तार्किक संबंध स्थापित कर पाता है, तो इसे स्वप्न-सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था में स्वप्नदृष्टा पूर्ण और शांतिपूर्ण नींद का आनंद लेता है। ज्ञानी इस अवस्था को संगति कहते हैं क्योंकि स्वप्न के विषयों में एकरूपता होती है और शांति भंग नहीं होती। कुछ उदाहरणों में, चेतना के उच्चतर स्तरों से संचार हो सकता है। यदि संपूर्ण स्वप्न प्रक्रिया के दौरान स्वप्नदृष्टा अपनी आत्म-चेतना नहीं खोता, तो इसे स्वप्न-तुरीय कहते हैं। योगी इसे सुसंहित अवस्था कहते हैं। ज्ञानियों के दृष्टिकोण से, ये व्याप्ति या व्यापकता की अवस्थाएँ हैं। स्वप्नदृष्टा स्वप्नावस्था की इन सभी अवस्थाओं में अपने अस्तित्व की व्यापकता का अनुभव करता है।

10) अविवेको माया सौसुप्तं

अविवेक का अर्थ है जागरूकता का अभाव। माया भ्रम का एक रूप है। सुषुप्ति गहन निद्रा की अवस्था है। गहरी निद्रा की अवस्था बाहरी शारीरिक गतिविधि और आंतरिक मानसिक गतिविधि के अभाव से चिह्नित होती है। यह शून्य या खाली प्रतीत होती है। लेकिन यह ब्रह्मांड का बीज है। सब कुछ यहीं से निकलता है और यहाँ ही ,सब कुछ कर्ता में विलीन हो जाता है। यह एक ऐसी अवस्था है जहाँ सभी विचार-रचनाएँ समाप्त हो जाती हैं। उच्च स्तर पर यह भैरव अवस्था है। इसके तीन चरण हैं। पहला है सुषुप्ति-जागृत। यह गहरी निद्रा में जाग्रत अवस्था है। इसे उदिता, अर्थात् उदित अवस्था कहते हैं। इसमें वस्तुगत जगत का एक अवशिष्ट प्रभाव अव्यक्त रूप में रहेगा। अगली अवस्था सुषुप्ति-स्वप्न है। इसे विपुला कहते हैं। अवशिष्ट प्रभावों को पोषित किया जाता है ताकि वे और प्रबल हो जाएँ। सुषुप्ति-सुषुप्ति की अवस्था को शांता कहते हैं। इस अवस्था में वस्तुनिष्ठ दुनिया के अवशिष्ट संस्कार शांत हो जाते हैं और व्यक्ति अधिक शांति का अनुभव करता है। अगली अवस्था सुषुप्ति-तुरीय को सुप्रसन्न कहा जाता है। इस अवस्था में योगी स्वयं को शिव चेतना में स्थापित करता है। यह अवस्था आनंद, शांति और हर्ष से परिपूर्ण होती है।

स्वप्नरहित निद्रा में संस्कारों को याद रखने या अभिलेखित करने का कोई साधन नहीं होता। मन और शरीर विश्राम में होते हैं, लेकिन चेतना बनी रहती है। यह अस्तित्व की एक अचेतन अवस्था है। लेकिन, सुषुप्ति में ज्ञात और ज्ञेय के बीच सचेतन मिलन का अभाव होता है। तंत्र कहते हैं कि तुरीय अवस्था में केवल तीन चरण होते हैं, अर्थात् तुरीय-जागृत, तुरीय-स्वप्न और तुरीय-सुषुप्ति। तंत्र तुरीय-सुषुप्ति का वर्णन सर्वार्थ के रूप में करते हैं। किसी और योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। योगी इसे महाप्रचय कहते हैं। इस अवस्था में पारलौकिक और अंतर्निहित के बीच का अंतर भी मिट जाता है। जो इस अवस्था में प्रवेश कर गया, उसके लिए सब कुछ केवल शिव है।

11) त्रितय भोक्ता वीरेशः

सत्व, रज और तम ये तीन स्वभाव गुण कहलाते हैं। ये व्यक्ति के मूल स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। चेतना का वह शरीर जो इन गुणों की गतिविधियों के प्रवाह को सहारा देता है, उसे अनुभवकर्ताया भोक्ता कहा जाता है। मंथान भैरव, जो अपनी स्वतंत्र इच्छा के विचारों के मंथन द्वारा ब्रह्मांड का निर्माण और आत्मस्थता करते हैं, उन्हें वीरेश कहा जाता है।

जब सामान्य जीवन में इंद्रियाँ सामान्य रूप से कार्य करती हैं, तो वे केवल वृत्तियाँ होती हैं, अर्थात अनुभव प्राप्त करने के तरीके। इंद्रियाँ वस्तुनिष्ठ अनुभव प्राप्त करती हैं और मन व्यक्तिपरक अनुभव प्राप्त करता है। जब व्यक्ति या कर्ता सचेतन रूप से चौथी अवस्था, तुरीय, का अनुभव प्राप्त करता है, तो उसकी इन्द्रिय वृत्तियों के बजाय शक्तियाँ बन जाती हैं। ये शक्तियाँ या दिव्य शक्तियाँ व्यक्ति को भेदों को समाप्त करने में सहायता करती हैं। ऐसी स्थिति में इंद्रियाँ केवल इंद्रियाँ नहीं रह जातीं, बल्कि उन्हें वीर कहा जाता है। अब अनुभवकर्ता उनका स्वामी बन जाता है। साधक अब उनके नियंत्रण में नहीं है, और वह उन्हें जीवन के उच्च उद्देश्यों के लिए उपयोग करता है। वह अब पीड़ित (भोग्या) नहीं है, बल्कि वह स्वामी बन जाता है और जीवित रहते हुए मुक्ति प्राप्त करता है। इसे जीवनमुक्ति कहा जाता है। महाम्नाय में, ऐसे साधक को मंथान भैरव की स्थिति प्राप्त किया हुआ दिव्य पुरुष कहा जाता है जो वस्तुनिष्ठ अनुभव को अपने भीतर वापस ले लेता है।

शैव दर्शन को तीन दृष्टिकोणों से समझाया गया है। 1) मुख्य रूप से अभेद या गैर-भेद के दृष्टिकोण से। इस दृष्टिकोण से जुड़े शास्त्रों को भैरव शास्त्र कहा जाता है। इन्हें महाआम्नाय कहा जाता है। 2) दूसरा भेदाभेद दृष्टिकोण से। यह एक पहचान भेद है। इस दृष्टिकोण से जुड़े शास्त्रों को रुद्र शास्त्र कहा जाता है और 3) तीसरा, मुख्य रूप से भेद दृष्टिकोण से । वीरेश या भैरव वह हैं जो वस्तुनिष्ठ अनुभव का मंथन करते हैं, उसे अपने भीतर समेट लेते हैं और फिर उसे वमन या सृजन के रूप में प्रकट करते हैं। सब कुछ उनकी पूर्ण स्वतंत्र इच्छा (जिसे स्वातंत्र्य कहते हैं) के अनुसार होता है। वे अपने तीन गुणों की क्रीड़ा मतलब सृष्टि, पालन और निवृत्ति की तीन अवस्थाओं के स्रोत, गंतव्य और भोक्ता हैं। वे त्रिदेवों के भोक्ता हैं जो उन्हें तुरीय, शिव चेतना की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि मंथान भैरव क्रीड़ा रूपी तीनों अवस्थाओं के भोक्ता हैं। वे नियंत्रक और आत्मसाक्षी भी हैं।

12) विस्मयो योगभूमिकाः

परमात्मा से मिलन के आरोहण के स्तर अद्भुत और आकर्षक हैं। अपने वास्तविक स्वरूप में लीन होकर, योगी जीवनदायिनी और जीवन-रक्षक अमृत का आस्वादन करता है। उसे एक सुंदरमय-सुख की अनुभूति होती है। जैसे-जैसे योगी सार्वभौमिक चेतना की ओर उत्तरोत्तर आगे बढ़ता है, उसे अनेक आकर्षक अनुभवों का दर्शन प्राप्त होता है। विभिन्न देवताओं, ऋषियों और दिव्य सत्ताओं के दर्शन हो सकते हैं जो योगी को उसके उत्थान और आगे की यात्रा के लिए आशीर्वाद देते हैं। योगी को सर्वांगीण विस्तार का अनुभव होता है। ऊर्जा केंद्रों का उत्थान, प्रकटीकरण और ज्ञान के दिव्य प्रकाश की चमक, ये सभी उसे मोहित करते हैं और योगी विस्मित हो जाता है।

जिस योगी की चेतना परम में स्थापित हो जाती है, वह अपनी प्रकृति को सभी वस्तुओं का आधार और सार्वभौमिक कारण मानता है। वह उसे स्वयं प्रकाशमान पाता है, और उसकी चमक में सब कुछ चमक उठता है। यह उसे आश्चर्य के नए स्तरों तक ले जाता है। वह निरंतर चिंतन के सौंदर्यपूर्ण आनंद में डूबा रहेगा। हर बार, वह इसे हर क्षण नए सिरे से और अद्भुत रूप से नया अनुभव करता है। ऐसा मोह किसी भय, संदेह या भ्रम का कारण नहीं बनता, बल्कि योगी को शाश्वत शांति और संतोष के अवतरण से भर देता है।

योग साधना के मार्ग पर दिव्य दर्शन का अनुभव किया जा सकता है। ये विस्मय और आनंद की अनुभूति उत्पन्न करते हैं। कभी-कभी, योगी उच्चतर स्तरों से निर्देश या मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। यह हमारे भीतर पहले से मौजूद मूल प्रकृति या वास्तविकता का क्रमिक प्रकटीकरण है। इस अवस्था का प्रत्यक्ष अनुभव व्यक्ति की धारणा का विस्तार करता है। इस अवस्था और चिंतन शिव चेतना में स्थापित होने और उसमें बने रहने में सहायता करता है।

13) इच्छाशक्तितमा कुमारी (इच्छाशक्तिरुमा कुमारी)

शिव की चेतना के साथ संवाद करने वाले योगी की इच्छा शक्ति उमा है। उमा शिव का तेज है। इसका अर्थ है कि भैरव अवस्था को प्राप्त योगी में शिव का तेज चमकता है। भैरव की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त योगी की इच्छा शक्ति, उमा कहलाती है। यह भगवान की स्वातंत्र्य शक्ति है। इसे कुमारी कहा जाता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने एक अलग व्याख्या अपनाई है, "इच्छा शक्तिर उमा कुमारी ।" इसका अर्थ है कि भगवान की स्वतंत्र इच्छा कुमारी उमा है। कुमारी वह शक्ति है जो द्वैत को जन्म देने वाली माया का नाश करती है। जब माया का नाश हो जाता है, तो शुद्ध शाश्वत चेतना सर्वत्र प्रकाशित होती है। यह सर्वोच्च दिव्य शक्ति है जो विभिन्न नामों और विभिन्न रूपों वाले सभी देवी-देवताओं में निवास करती है। यह सभी का सार और अभिव्यक्ति है। यह भगवान की स्वतंत्र इच्छा है जो अभिव्यक्ति और निवृत्ति दोनों लाती है। उन्हें कुमारी इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे सदैव भोक्ता (भोगने वाली) अवस्था में रहती हैं और कभी भोग्या (भोग की वस्तु) नहीं होतीं। उनका कौमार्य उनकी शुद्ध भोगी आत्मनिष्ठा (सूक्ष्म और स्थूल आत्मा) की प्रकृति से संबंधित है। जब वे प्रकट होती हैं, तो उन्हें अंबिकाया माता कहा जाता है। जब वे सब कुछ समेट लेती हैं, तो उन्हें उमा कहा जाता है। हालाँकि, आचार्य क्षेमराज ने कुमारी को ये दोनों ही स्वरूप प्रदान किए हैं। वे शिव की सार्वभौमिक चेतना की रचनात्मक स्वतंत्रता हैं और सृजन और प्रत्याहार के खेल का आनंद लेती हैं। आचार्य उत्पल देव आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं, "हे प्रभु, आपके प्रति मेरी भक्ति देवी उमा के समान हो, जो अनंत आनंद से परिपूर्ण हैं, आपसे कभी अलग नहीं होतीं और आपको सर्वदा अत्यंत प्रिय होती। इस प्रकार, यह सूत्र कहता है कि मुक्त योगी की स्वतंत्रता इस वस्तुनिष्ठ ब्रह्मांड में सर्वत्र अबाधित रूप से कार्यरत रहती है। वह सभी वस्तुओं की समग्रता का, अर्थात् अव्यक्त स्तर से लेकर पूर्णतः व्यक्त ब्रह्मांड तक, अनुभव करता है कि यह उसका अपना शरीर है, शिव की शुद्ध चेतना की अभिव्यक्ति है जिसमें वह दृढ़ता से स्थित है।

14) दृश्यम् शरीरम्

दृश्यम् वह वस्तुनिष्ठ घटना है जो व्यक्ति के बाह्य या आंतरिक जगत में अनुभव की जाती है। जो आंतरिक और बाह्य दोनों रूपों में बोधगम्य है, योगी उसे केवल अपने शरीर के रूप में अनुभव करता है, किसी पृथक वस्तु के रूप में नहीं। वह उसके समान है, उससे भिन्न नहीं। वह अनुभव करता है, "अहं अस्मि, मैं यह हूँ।" अज्ञानी अनुभवजन्य प्राणी वस्तुनिष्ठ जगत के द्रष्टाओं की तरह अनुभव करते हैं। चाहे वह चेतन अवस्था में हो (भौतिक शरीर के रूप में) या स्वप्न अवस्था में (मन के रूप में), जो शारीरिक अनुभूतियों की भूमिका निभाता है) या गहन निद्रा में जहाँ केवल प्राण ही सक्रिय है या शून्य प्रमाता नामक शून्य अवस्था में, सदैव योगी शाश्वत चेतना के साथ निरंतर एकाकार रहता है। यह उसका संपूर्ण शरीर है। एक बार जब योगी सामान्य चेतन अवस्था की सीमाओं से परे चला जाता है, तो भेद और विभाजन असत्य प्रतीत होते हैं। एक बार जब योगी शिव की चेतना में स्थापित हो जाता है, तो सीमित व्यक्तिपरक अनुभूति समाप्त हो जाती है। वस्तुनिष्ठ

जगत को व्यक्तिगत चेतना के विस्तार या उसके शरीर के एक अंग के रूप में अनुभव किया जाएगा। ऐसे योगी के लिए, दृश्य घटना, चाहे आंतरिक हो या बाह्य, उसकी चेतना के एक रूप में प्रकट होती है जो शाश्वत है और स्वयं भगवान शिव जो , अविभाज्य वास्तविकता है। शिव सभी विद्यमान वस्तुओं के बीज रूप में अवतरित हैं और उनके बाहर कुछ भी विद्यमान नहीं है। वे सर्वव्यापी हैं और सभी अनुभूतियाँ तथा प्रत्यक्ष जगत उनका ही प्रतिबिंब हैं। वे विषय भी हैं और अविषय भी। शिव चेतना में स्थित योगी अनुभव करता है कि सभी अनुभूतियाँ और प्रत्यक्ष जगत उसकी चेतना का विस्तार हैं, उसकी शिव चेतना सभी अनुभूतियों को अपने में समाहित कर लेती है।

15) हृदये चित्त संघात्, दृश्य स्वप्न दर्शनम्

हृदय वह मूल चेतना है जो सभी इंद्रियों और प्राण नाड़ियों को धारण करती है। यह वह स्थान है जहाँ ध्यान में समस्त वस्तुगत जगत विलीन हो जाता है। हृदय की शून्यता एक पारलौकिक योगिक चेतना है जिसे "निर्मनस्क", की अवस्था कहा जाता है। हृदय की शून्यता के माध्यम से, योगी अपने वास्तविक अप्रकाशित स्वरूप का साक्षात्कार करता है। उपनिषदों में कहा गया है कि हृदय में स्वर्ग और पृथ्वी दोनों विद्यमान हैं। प्राचीन ऋषियों ने इसी हृदय में वैदिक मंत्रों का श्रवण किया था। इस प्रकार, यह सभी प्राणियों का सृष्टा (प्रजापति) और मूल (ब्रह्मा) है। कश्मीरी शैव दर्शन में, हृदय जागरूकता का प्रतीक है। यह सृष्टि, पालन और निवृत्ति, इन तीनों गतियों का सार्वभौमिक स्रोत है और बिना किसी परिवर्तन के इन सभी में व्याप्त है। वेद के अनुसार हृदय आयतन है, सभी देवताओं का निवास स्थान। यहाँ सार्वभौमिक चेतना के परम प्रकाश का अनुभव होता है। आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि हृदय चेतना और चिंतनशील जागरूकता का अविभाजित प्रकाश है। अतः, हृदय भैरव की वास्तविक अवस्था है जिसे निरपेक्ष या अनुत्तर कहा जाता है, जो स्वतंत्र इच्छा पराशक्ति को प्रकट करती है। शिव और शक्ति के स्पंदित मिलन (संघट) के माध्यम से, ब्रह्मांड उत्सर्जित और लीन होता है। अभिव्यक्ति या अन्यथा शक्ति की इच्छा, ज्ञान और क्रिया के माध्यम से होनेवाला शक्ति के कार्य हैं। इन शक्तियों का निरंतर विस्तार और संकुचन अभिव्यक्ति और मिलन का कारण बनता है। इन शक्तियों का त्रिकोणीय कंपन अंततः परमानंद के धाम में स्थित होता है, जब योगी शिव की चेतना में स्थित हो जाता है। चेतना के प्रकाश पर एकाग्र मन संपूर्ण ब्रह्मांड को उसमें व्याप्त मानता है। यह प्रत्यभिज्ञा है। आचार्य भट्ट भास्कर के अनुसार, इस संदर्भ में हृदय श्वास की आरोही और अवरोही धाराओं का संपर्क बिंदु है। बाहर जाने और आने वाले विचारों के बीच का शून्य। विचारों की इस शून्यता या व्योम को तकनीकी रूप से हृदय कहा जाता है। अतः, हृदय या हृदय आधारभूत चेतना को इंगित करता है। चित्त समाधि का अर्थ है मन का मूल चेतना पर एकाग्र होना। दृश्य का अर्थ है शरीर, प्राण और मन जैसी वस्तुनिष्ठ घटनाएँ। स्वप्न का अर्थ है शून्यता, किसी भी वस्तुनिष्ठ घटना का अभाव।आचार्य क्षेमराज के अनुसार, स्वप्न वस्तुनिष्ठता के पूर्ण अभाव की अवस्था है। दर्शनम् का अर्थ है प्रत्येक वस्तु का उसकी मूल वास्तविकता में, बिना किसी भेद के प्रकट होना। विज्ञान भैरव तंत्र पर अपने भाष्य में आचार्य शिवोपाध्याय कहते हैं कि हृदय कमल का एक पात्र प्रमाण (ज्ञान) है, दूसरा पात्र प्रमेय (वस्तुएँ) है, और हृदय कमल का केंद्र प्रमता (स्वयं) है जिसमें व्यक्ति को शिव की चेतना में स्थापित होने के लिए मानसिक रूप से डुबकी लगानी चाहिए। हृदय और मन की परस्पर क्रिया के कारण योगी में ब्रह्मांड की स्वप्न जैसी स्थिति का सचेतन बोध उत्पन्न होता है। मन बोध का एक साधन है, लेकिन इसमें विस्तार की अनंत क्षमता है जिससे यह व्यक्तित्व की सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है। इस प्रकार यह सूत्र कहता है कि आत्मा या हृदय में लीन योगी के लिए, संसार स्वप्न के समान प्रतीत होता है। शिव ज्ञान (शिव के ज्ञान) के माध्यम से, वह शाश्वत चेतना के एक साधन के रूप में जो चाहे वह स्वप्न देख सकता है और जो चाहे उसे रच सकता है।

16) शुद्धशक्ति संधानाद्वा

अब तक, सूत्रों ने आंतरिक और बाह्य प्रकृति के बारे में बात की गयी है। यहाँ से तीन सूत्र बोध के बारे में बात करते हैं।

व्यक्ति का अपना स्वभाव आंतरिक और बाह्य पहलुओं से मुक्त होता है। स्वयं के स्वभाव का प्रकाश ही वास्तविकता या शिव चेतना है जो कभी क्षीण नहीं होती। यहाँ कोई आंतरिक या बाह्य क्षेत्र नहीं है क्योंकि यह पूर्ण और अविभाजित है। जब कंचुक या सीमांत स्थितियाँ भंग हो जाती हैं, तो जो चमकता है वह शाश्वत, अविभाजित शिव की चेतना है। शिव शुद्ध और बिना शर्त सिद्धांत हैं। सूत्र कहता है कि इस शुद्ध सिद्धांत का चिंतन करके व्यक्ति परम चेतना का साक्षात्कार कर सकता है। यह व्यक्ति की अपनी प्रामाणिक अवस्था है, और यह एक अविभाजित, अखंड अवस्था है जिसे अखंडिता या अनंत भी कहा जाता है। यह परम आनंद का स्तर है। आचार्य भट्ट भास्कर कहते हैं कि इस अवस्था में योगी को शिव के साथ ब्रह्मांड की एकता पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता नहीं है। उसे अपने भीतर चमकती चेतना के शुद्ध प्रकाश पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जिससे उसे यह बोध हो कि संपूर्ण ब्रह्मांड उसके वास्तविक स्वरूप का ही प्रतिबिंब हैं। भेद समाप्त हो जाते हैं और इसे विश्राम की अवस्था कहा गया है। यह आनंद की उत्तेजन से भी रहित शांति की अवस्था है। इसे शिव-चैतन्य कहा गया है। इस प्रकार, यह सूत्र कहता है कि शुद्ध सिद्धांत पर चिंतन करने से परम शिव चेतना प्राप्त होती है। यह वह सिद्धांत है जहाँ कोई बंधन नहीं हैं, और बंधा हुआ व्यक्ति बंधनों से मुक्ति प्राप्त करता है। इसे पाश-मुक्ति (सीमित परिस्थितियों या बंधनों से मुक्ति) के रूप में जाना जाता है।

17) स्वपदा शक्तिः

इसका अर्थ है अपने धाम में स्थित ऊर्जा। "स्वपद" का अर्थ है "अपना धाम"। इसे परम सत्य या सत् कहा जाता है। शिव की प्राणशक्ति उनकी स्वतंत्र इच्छा, ज्ञान और कर्म है। इसे शक्ति कहा जाता है। अतः, शक्ति का धाम शिव हैं। जब योगी पूर्ण चेतना में स्थित हो जाता है, तो वह परम धाम को प्राप्त करता है। इसे "प्रतिभा" भी कहा जाता है, अंतर्ज्ञान का प्रकाश जो योगी को प्रकाशित करता है।आचार्य भट्ट भास्कर कहते हैं कि प्राप्ति का स्तर आनंद का धाम है, जो शक्ति का अपना धाम या स्वपद है। व्यक्तित्व सांसारिक अस्तित्व की बंधनकारी प्रकृति से मुक्त हो जाता है। परम सत्य का ध्यान भौतिक अस्तित्व की सभी सीमाओं से परे जाने का मार्ग है। यह माया के मोह से मुक्ति देता है। कश्मीरी शैव धर्म इस अवस्था को सदाशिव के रूप में वर्णित करता है। शिव शुद्ध सार्वभौमिक चेतना हैं और बिना किसी भेद या गुण के हैं। इस प्रकार, यह सूत्र कहता है कि आनंद का धाम शक्ति का भी धाम है। परम चेतना के क्षेत्र से बाहर कुछ भी नहीं रहता।

18) वितर्क आत्मज्ञानम्

परम सत्य या वास्तविकता को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जाना है, लेकिन तार्किक तर्क या विचार निर्माण के माध्यम से नहीं। वितर्क या जागरूकता एक ऐसी अवस्था है जहाँ सभी तर्क और विचार निर्माण, स्वयं के शिव होने के विश्वास में विलीन हो जाते हैं। यह एक अपने वास्तविक स्वरूप का निरंतर बोध, जिसे स्वस्वभाव कहते हैं और विमर्श भी कहलाता है। कश्मीरी शैव धर्म इसे प्रकटीकरण का एक स्तर, प्रोल्लास भूमि कहता है। शिव के साथ अपनी एकता का पूर्ण विश्वास ही आत्मज्ञान है। इसे "आत्मज्ञान या शिव ज्ञान " कहा गया है। यह दृढ़ और अटूट बोध कि "मैं शिव हूँ", आत्मज्ञान कहलाता है। विज्ञान भैरव कहते हैं कि शिव सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार, "मैं शिव हूँ" की अनुभूति होने पर, सभी भेद मिट जाते हैं और सार्वभौमिक चेतना एक अविभाज्य, स्वतंत्र और पूर्ण वास्तविकता के रूप में चमक उठती है। स्पंद कारिका कहती है कि शिव के रूप में स्वयं का बोध अमृत की प्राप्ति है। यह चेतना को उसके अपने स्वरूप या निर्वाण में स्थापित करना है। आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि "मैं शिव हूँ, सबकी समग्रता" की दृढ़ और अखंड अनुभूति ही आत्मज्ञान है।

19) लोकानन्दाः समाधि सुखम्

यहाँ समाधि का अर्थ तल्लीनता या दुनिया को भूलना नहीं है। यह स्वयं के वास्तविक स्वरूप का निरंतर और सचेतन बोध

है। "लोकः" शब्द दो चीज़ों का निर्माण करता है। एक वह जो बोधगम्य है या वस्तुओं और संवेदनाओं का समूह है। दूसरा बोधकर्ता या विषयों का वर्ग है। विषय और वस्तु का यह भेद सांसारिक अस्तित्व का मूल सिद्धांत है। लेकिन समाधि की अवस्था में ऐसा भेद नहीं होता। एक योगी एकता के अनूठे आनंद का अनुभव करता है। उसके लिए विषय-वस्तु, आंतरिक-बाह्य आदि जैसे कोई भेद नहीं होते। सब कुछ आभास या शिव का स्वयं पर प्रतिबिंब है। यह उसका अपना स्वभाव है और इस प्रकार उसकी अपनी चेतना के क्षेत्र के बाहर कुछ भी नहीं है। इसलिए, उसे विषय और वस्तु का भेद महसूस नहीं होता। यह एक विलक्षणता है जो देश-काल और वस्तु की सभी अभिव्यक्तियाँ अपने में समाहित करती हुई चमकती है। इसे समाधि कहते हैं। इसे सुखम् कहा गया है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार की कोई अस्थिरता नहीं होती और यह पूर्ण संतुष्टि की अवस्था होती है। यह आनंद केवल योगी तक ही सीमित नहीं है। वह इसे अपने संपर्क में आने वाले सभी लोगों और प्राणियों तक प्रसारित करता है। समाधि में, आत्मा एक पृथक सत्ता के रूप में कार्य करना बंद कर देती है। यह वास्तविकता के एक आवश्यक पहलू के रूप में कार्य करती है। चूँकि यह पूर्ण आनंद की अवस्था है, इसलिए इसे सुखम् कहते हैं। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है, "यो वै भूमा तत् सुखम् न अल्पे सुखम् अस्ति।" सुखम् शब्द परम आनंद का सूचक है। इससे निम्न किसी भी वस्तु को सुखम् नहीं कहा जा सकता।

20) शक्ति संधाने शरीरोत्पत्तिः

शरीर का निर्माण या इच्छा की अभिव्यक्ति तब होती है जब शक्ति की ब्रह्मांडीय ऊर्जाएँ एक हो जाती हैं। योगी शक्ति के तीन पहलुओं को प्राप्त करता है। ये हैं इच्छा, ज्ञान और क्रिया, अर्थात स्वतंत्र इच्छा, ज्ञान और कर्म की शक्तियाँ। उसे पाँच शक्तियाँ प्राप्त होती हैं: 1) ईशानी 2) अपूरणी 3) हरदी 4) वामा और 5) मूर्ति। अन्य सभी शक्तियाँ इन्हीं से संबद्ध हैं। इन्हें चेतना का शरीर कहा जाता है। इन शक्तियों के विभिन्न संयोगों से प्रक्रियादेह या क्रिया शरीरों का निर्माण होता है। ये शरीर देवलोक, देवात्मा, नश्वर या कोई अन्य हो सकते हैं। इन शक्तियों की प्राप्ति पर, योगी किसी भी प्रकार के शरीर का निर्माण करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इसे "निर्माण काय" कहा जाता है। पराशक्ति सभी देवताओं और अन्य सभी शक्तियों का मूल (योनि) है। वह अग्नि और सोम के समान स्वरूप की हैं। सब कुछ उन्हीं से उत्पन्न होता है। उन्हीं के माध्यम से, हम शिव से अपनी अभेदता का बोध करते हैं। इसका अर्थ है कि महान भगवान शिव उस योगी के हृदय में विद्यमान इच्छाओं को पूर्ण करते हैं जिसने अभी तक उसका परित्याग नहीं किया है। सामान्यतः ऐसी इच्छाएँ उच्चतर प्रकृति की होती हैं और शिव कामना या शिव संकल्प, अर्थात् भगवान की इच्छा या निर्देश के अनुसार आगे बढ़ती हैं। संस्कृत में, शरीर का अर्थ केवल भौतिक शरीर ही नहीं है, बल्कि इसमें सूक्ष्म शरीर भी शामिल हैं। सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीरों से परे होते हैं और अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों में प्रवेश कर सकता हैं। आध्यात्मिक जागरूकता का स्तर जितना ऊँचा होगा, चेतना के मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक स्तरों में प्रवेश उतना ही अधिक होगा। यहाँ योगी अपनी दिव्य इच्छा के अनुसार ब्रह्मांड को नियंत्रित करने की शक्ति रखता है और इसे आध्यात्मिक कीमिया कहा जा सकता है। यह शरीर सभी जीवों से श्रेष्ठ है, यहाँ तक कि देवताओं की ।

आचार्य भट्ट भास्कर के अनुसार, ईशानी वैष्णवी शक्ति है। यह सार्वभौमिक इच्छाशक्ति है। अपूरणी कौलिकी शक्ति या विसर्ग शक्ति है। यह शुद्ध उत्सर्जक शक्ति है। यह ब्रह्मांड का गर्भ है जहाँ से सृष्टि का प्रवाह प्रवाहित होता है। हरदी शक्ति वह शक्ति है जो सिद्धों नामक प्रबुद्ध इंद्रियों और योगिनियों नामक उनके विषयों से प्रवाहित होती है। यह शक्ति आनंदमय अवस्था को विचलित नहीं करती, यद्यपि योगी निर्माण काय में कार्य करता है। वह केवल ईश्वर के हाथों में एक यंत्र होगा। वामा शक्ति उत्सर्जन की शक्ति है। इसे उन्मेष कहा जाता है। सृजन या प्रकटीकरण शिव और शक्ति के मिलन या यमल के रूप में होता है। मूर्ति शक्ति रूप और गुणों की शक्ति है। यह प्रकटीकरण में सार्वभौमिक चेतना से ऊर्जाओं के प्रवाह को उत्तेजित करती है। इस प्रकार, इन शक्तियों को प्राप्त करने वाला योगी अपनी दिव्य इच्छा के अनुसार किसी भी प्रकार के शरीर का निर्माण करने की शक्ति प्राप्त कर सकता है।

21) भूत सन्धान, भूत पृथक्त्वा विश्व संघट्टाः

भूत का अर्थ है शरीर, प्राण और वस्तुओं जैसे अस्तित्व। संधान का अर्थ है एक साथ रखना। भूत संधान का अर्थ है विकास को बढ़ाना या बढ़ावा देना। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा अंतरिक्ष और समय में अभिव्यक्ति होती है। लिंग पुराण के अनुसार, शिव स्वयं को आठ रूपों में विभाजित करके ब्रह्मांड में व्याप्त हैं। ये पाँच मूल तत्व और सूर्य, चंद्रमा और स्वयं (यज्ञ)। स्वयं को प्रायः यजमान कहा जाता है। इस प्रकार, संसार को पुर्यष्टक या आठों का नगर कहा जाता है। भूत संधान का अर्थ है सभी पहलुओं को एक साथ जोड़ना। एक होने से, हम शिव चेतना की समग्रता का अनुभव करेंगे।

भूत पृथक्तत्व का अर्थ है तत्वों को विद्यमान से पृथक करने की शक्ति। विश्व संघट्टाः का अर्थ है स्थान और काल की बाधाओं को दूर करके सभी वस्तुओं को एक साथ लाने की शक्ति। यह सार्वभौमिक चेतना की स्थापना है।

योगी इस संयोजन और अभिव्यक्ति के तत्वों को अलग करने की शक्ति के माध्यम से परम चेतना के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करता है। वह ईश्वरीय स्वतंत्र इच्छा के अनुसार कार्य करता है। सीमित आत्मा का कोई निशान नहीं रहता। (यत परमात्मेन, येन, यत्र, यथा)। यह सब शिव की स्वतंत्र इच्छा से होता है, जिस भी रूप में वे चाहें, जहाँ भी वे चाहें और जिस भी तरीके से वे निर्णय लें। योगी की कोई सीमित व्यक्तिगत पहचान नहीं होगी। यह शिव की स्वतंत्र इच्छाशक्ति ही है जो उसके माध्यम से कार्य करती है। यह सभी सीमाओं से परे है। यह पंचभूत सिद्धि और देश काल सिद्धि है, अर्थात पाँच मूल तत्वों पर प्रभुत्व और साथ ही स्थान और काल पर भी प्रभुत्व। योगी को यह बोध होता है कि उससे परे कुछ भी नहीं है और वह शिव के अतिरिक्त और कोई नहीं है (शिवा परम नेति, शिवोहमस्मीति)।

22) शुद्ध विद्योदयात् चक्रे सत्व सिद्धिः

चक्र से हमारा तात्पर्य ब्राह्मी और अन्य ऊर्जाओं से युक्त चेतना की देवी से है। जब योगी शुद्ध विद्या, शुद्ध ज्ञान में स्थित हो जाता है, तो वह शिव की सर्वोच्च शक्ति को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। यह परा-विद्या, सर्वोच्च है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर योगी ऊर्जाओं के चक्र से परे चला जाता है। वह परम सत्य शिव में स्थित हो जाता है। स्वच्छंद भैरव तंत्र कहता है कि इससे श्रेष्ठ कोई अन्य विद्या नहीं है। यह अवस्था कोई तार्किक निष्कर्ष या विचार निर्मिति नहीं है। यह एक प्रत्यक्ष अबाधित बोध और नित्य वर्तमान वास्तविकता का प्रकटीकरण है। यह शिव चेतना का स्वाभाविक अविरल प्रवाह है। इस शुद्ध विद्या को माया का शुद्ध विद्या तत्त्व नहीं समझा जाना चाहिए क्योंकि यह अवस्था माया के कार्यक्षेत्र से ऊपर है। यह एक ऐसी अवस्था है जहाँ स्वयं की वास्तविकता प्रकट होती है और सर्वोच्च चमकती है। यह सभी शक्तियों पर प्रभुत्व की अवस्था है। कश्मीर शैव दर्शन में, इस अवस्था को उन्मना अवस्था कहा जाता है। यह केवल आत्म-साक्षात्कार (आत्मा व्याप्ति) नहीं है, यह शिव के साथ पूर्ण तादात्म्य (शिवत्व योजना) भी है। आत्म व्याप्ति में, प्रकृति में व्याप्ति का सीमित ज्ञान होता है कि "अहम् अस्मि, मैं यह सब हूँ।" लेकिन शिव व्याप्ति में, सर्वव्यापी, सार्वभौमिक ज्ञान होता है कि "शिव परम नेति, शिवोहम् अस्मि, मैं शिव हूँ और शिव ही यह सब हैं।" इस अवस्था में यह बोध होता है कि सार्वभौमिक चेतना ही हमारा वास्तविक स्वरूप है और यह पारलौकिक तथा अन्तर्निहित दोनों है। यह अवस्था अनंत काल का एक अविभाज्य विस्तार है, अनंत आनंद या परमानंद। योगी शिव स्वरूप को प्राप्त करता है।

23) महाह्रदानुसंधानं मंत्र-वीर्यानुभवः

महाह्रद का अर्थ है दिव्य शक्ति का विशाल सरोवर या अनंत भंडार। यह सभी मंत्रों का उद्गम स्रोत है। मात्रिका का अर्थ है संस्कृत भाषा की वर्णमाला। इस वर्णमाला को बीज तत्त्वों के रूप में वर्णित किया गया है जिनका उपयोग विभिन्न ब्रह्मांडीय ऊर्जाओं या देवताओं का आह्वान करने और विभिन्न शक्तियों के उद्भव के लिए विभिन्न संयोजनों में किया जाता है। आह्वान मंत्र साधना या मंत्र के जप के माध्यम से किया जाता है और मंत्र-सिद्धि का अनुभव साक्षात्कार के माध्यम से होता है, जो आह्वान किए गए देवता की शक्ति या दर्शन के उद्भव का अनुभव है। यह मंत्र-वीर्य के कारण होता है। आचार्य

उत्पल देव कहते हैं कि बद्ध अवस्था या पशु भाव में मंत्र केवल उच्चारित ध्वनियाँ हैं। मंत्र-वीर्य या मंत्र की शक्ति का अनुभव करने के लिए इन्हें उचित संस्कार या आंतरिक शुद्धि प्रक्रिया से जोड़ा जाना चाहिए। इससे शांति या परा-वाक की स्थिति प्राप्त होती है। जब ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो सुषुम्ना में मौन और सहज जप होना सदैव शुरू हो जाता है। यहाँ, मंत्र आध्यात्मिकतः शक्तिशाली हो जाता है।

यह परम चेतना (परा-संवित) है, शिव की आदि शक्ति, जो ब्रह्मांड को सूक्ष्मतम से स्थूल वस्तुओं तक प्रक्षेपित करती है। यह महाह्रद नामक महान सरोवर के जल पर कंपन के रूप में खेचरी और अन्य धाराओं के पूरे समूह को गति प्रदान करती है। मालिनी विजय तंत्र सर्वोच्च शक्ति को स्वयं महान सरोवर के रूप में वर्णित करता है। यह मंत्र में अभिव्यक्त ध्वनि की सृजनात्मक शक्ति है। इसे नाद अनुसंधान भी कहते हैं। यह शक्ति साधक को परा-वाक् की अवस्था तक ले जाती है। इसी कारण, संस्कृत वर्णमाला को शक्तियों की माला, मातृका-मालिनी कहा जाता है।

खेचरी का संबंध प्रमता यानि अनुभवकर्ता से है। खेचरी वह है जो चेतना के प्रतीक आकाश में गति करती है। गोचरी का संबंध अंतःकरण, आंतरिक मानसिक तंत्र से है। दिक्चारी का संबंध बाह्य इंद्रिय बोध से है। भूचरी का संबंध बाह्य वस्तुओं से है। इन शक्तियों को शक्ति चक्र कहा जाता है जो सार्वभौमिक चेतना का वस्तुकरण करती हैं। खेचरी चक्र से व्यक्ति सर्वज्ञ चेतना की अवस्था से सीमित अनुभव की अवस्था में आ जाता है। गोचरी चक्र से वह आंतरिक मानसिक तंत्र से युक्त होता है। दिक्चारी चक्र से वह बाह्य इंद्रियों से संपन्न होता है। भूचरी चक्र से वह वस्तुनिष्ठ जगत तक सीमित होता है। परम स्वामिनी, परा भट्टारिका संवित्, स्वयं से संपूर्ण ब्रह्मांड का उत्सर्जन करती हैं। वे असंख्य दिव्य गुणों से संपन्न हैं और इस प्रकार खेचरी चक्र और अन्य धाराओं की क्रियाशीलता को प्रेरित करती हैं। इस चक्र के पार जाकर, योगी इन सभी शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है।

अनुसन्धनात से हमारा तात्पर्य इसके साथ निरंतर तादात्म्य के आंतरिक बोध से है, वीर्यानुभव मंत्र है, जो परम अहम् (मैं) चेतना यानि परहंता विमर्श का ज्ञान है। व्यक्तिगत आत्मा (विविधता), शिव और शक्ति का मिलन (विविधता में एकता) शिव (परम और अविभाज्य परम चेतना) द्वारा पूरी तरह आच्छादित हैं। इस अवस्था में योगिनी चक्र योगी पर प्रभाव डालना बंद कर देता है क्योंकि वह उसका स्वामी बन जाता है।

B) शाक्तोपाय के बारे में और शाक्तोपाय के सूत्र

शाक्तोपाय विचार का एक योगिक अभ्यास है। मालिनी विजय तंत्र कहता है कि जब कोई योगी ईश्वरीय चेतना के किसी विशिष्ट विचार पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह उस चेतना को निर्बाध रूप से विकसित करता है। यह उन साधकों के लिए है जो शंभवोपाय के निर्विकल्प योग में प्रवेश नहीं कर सकते। कुछ साधक गहरे मानसिक संस्कारों के कारण निर्विकल्प अवस्था में प्रवेश नहीं कर पाते। मानसिक गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करके निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने हेतु मानसिक बाधाओं को पार करना होता है। इस उपाय में, चित्त ईश्वर तक पहुँचने का साधन है। चित्त का उपयोग मुख्यतः अपने मूल स्रोत की खोज के लिए किया जाता है। वास्तविक " अहम् यानि मैं" के महत्व पर निरंतर ध्यान करने से, चित्त पवित्र होता है और अंततः आत्मा, परम आत्मा में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ, भावना और शुद्ध विद्या द्वारा चित्त को ऊपर की ओर उठाया जाता है। भावना पर दृढ़ रहना धीरे-धीरे शुद्ध विद्या, प्रत्यक्ष साक्षात्कार में परिवर्तित हो जाता है। इसका अर्थ है कि भावना अंततः परा-विद्या की ओर ले जाती है। अतः यह उपाय उन साधकों के लिए है जिनका चित्त पहले से ही आध्यात्मिक रूप से उन्मुख है। यह आत्म-अन्वेषण का मार्ग है। आध्यात्मिक रूप से उन्मुख चित्त और मंत्र साधना का संयोजन व्यक्ति को अपने मूल स्वरूप का साक्षात्कार कराता है। चूँकि आत्म-अन्वेषण में विचार और विमर्श सम्मिलित हैं, इसलिए यह मार्ग भगवान रमण महर्षि द्वारा प्रतिपादित आत्म-अन्वेषण के कुछ-कुछ समान प्रतीत होता है।

1) चित्तं मंत्रः

मंत्र का जाप मानसिक जागरूकता के साथ किया जाना चाहिए। यह वह बीज है जो पूजित देवता के रूप में परम सत्ता के प्रकटीकरण में विकसित होता है। निरंतर जप या एकाग्रता से, मंत्र में निहित शक्ति साधक को अलगाव और भेद की भावना को दूर करने में सक्षम बनाती है। वह मंत्र-चेतना के साथ एकाकार हो जाता है। मंत्र की व्युत्पत्ति संबंधी व्याख्या, बीज तत्व पर चिंतन करते हुए, इसके मनन की विशेषता की ओर संकेत करती है। मंत्र पर एकाग्र मन देवता का आह्वान करता है और देवता मन को भर देते हैं। मंत्र को देवता का सूक्ष्म रूप कहा जाता है और जब मानसिक ऊर्जाएँ इस पर केंद्रित होती हैं, तो मन देवता में परिवर्तित हो जाता है। मानव शरीर में, मन ही अयातन है, अर्थात किसी भी देवता का निवास स्थान। मन ही देवता का रूप धारण करता है। यह पहले से विद्यमान वास्तविकता का प्रकटीकरण है। इसका अर्थ है कि मंत्र ही देवता है और मन ही देवता है। इसलिए, सूत्र कहता है कि मन ही मंत्र है।

मंत्र को केवल विभिन्न अक्षरों का समूह नहीं समझना चाहिए। सर्व ज्ञानोत्तर तंत्र कहता है, "वे मंत्र नहीं हैं जो केवल उच्चारण का विषय हैं। मंत्र अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं। शक्ति का प्रकटीकरण साधक की शुद्धता के स्तर पर निर्भर करता है। तंत्र सद्भाव कहता है कि वह जो अविनाशी है, सभी मंत्रों की आत्मा है। श्रीकंठ संहिता कहती है कि यदि मंत्र का जाप करने वाला साधक यह अनुभव करता है कि वह चैतन्य मंत्र से भिन्न है, तो वह कभी भी बोध या सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। स्पंदकारिका कहती है कि मंत्रों में शिव के गुण होते हैं और शिव चेतना ही सभी मंत्रों की प्रेरक शक्ति है। मंत्र का निरंतर ध्यान हमें परा-वाक् अवस्था की ओर ले जाता है। मालिनी विजय तंत्र कहता है, "उच्चार रहितं वस्तुः," वास्तविकता उच्चारण की सीमा में नहीं है।" परन्तु एकाग्र और सचेत उच्चारण मन को परा-वाक् नामक शांति की अवस्था में ले जाता है और यह अवस्था साधक को "अहं-चेतना" की प्राप्ति प्रदान करती है। यह परा-वाक् सभी मंत्रों की प्रेरक शक्ति है। यह मंत्र-चेतना है। परा-वाक् या परम चेतना स्वयं शिव हैं। वे भोक्ता हैं, भोग्य नहीं, भोग्य का मतलब है भोग का विषय। अतः, मंत्रों को कभी भी विषय के स्तर तक सीमित नहीं किया जा सकता। निरंतर सचेतन जप से मन परम चेतना में परिवर्तित हो जाता है।

2) प्रयत्नम साधकः

इस संदर्भ में प्रयत्न का अर्थ है मंत्र में निहित देवता के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए मन और शरीर का दृढ़ प्रयोग। इस प्रकार मंत्र-चैतन्य प्रकट होगा और विस्तार करना शुरू करेगा। यह प्रयास ही है जो लक्ष्य को प्राप्त करता है। उच्चार का अर्थ केवल मंत्र का उच्चारण नहीं है। यह 'उत्' और 'चर' का योग है, जो वास्तविकता के उच्चतर स्तरों की ओर अग्रसर होता है। इसका अर्थ है मन का अनंत काल के आलिंगन में गति करना। सतत प्रयास का अर्थ है मंत्र के साथ चित्त की एकता प्राप्त करना। इसे केवल बौद्धिक समझ के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। यह प्रत्यक्ष अनुभूति है, व्यक्तिपरक बोध है कि वास्तविकता भीतर चमकती है और सर्वव्यापी है। यह कोई वस्तुनिष्ठ बोध या समझ नहीं है। योगी यह अनुभव करता है कि चित्तत्व ही चेतन वास्तविकता है। क्षेमराज ने "त्रिक सार" और "तंत्र सद्भाव" नामक कृतियों का उदाहरण दिया है, जिनमें मंत्र को शिव चेतना के वास्तविक स्वरूप, स्वस्वभाव के रूप में वर्णित किया गया है। प्रयत्न योगी को शिव के स्तर, परमार्थ, परम लक्ष्य पर स्थापित करता है। प्रयत्न तादात्म्य, ईश्वर के साथ एकता को सक्षम बनाता है। आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि निरंतर प्रयास से योगी अपने भीतर चेतना के प्रकाश (मनोबिन्दु) को पकड़ लेता है, जैसे धनुष पर चढ़ा हुआ और बलपूर्वक खींचा गया बाण अपने लक्ष्य की ओर उड़ता है। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि प्रयास हमें वास्तविकता के लक्ष्य तक ले जाता है।

3) विद्याशरीर सत्ता मंत्र रहस्यम्

मंत्र का रहस्य उसके ज्ञान-शरीर में निहित है। इस संदर्भ में ज्ञान का अर्थ है अपने अंतर्निहित प्रकाश का प्रकटीकरण। यह हमारे वास्तविक स्वरूप की ओर एक ऊर्ध्वगामी गति है। यह शुद्ध चेतना के साथ एकाकार हो जाना है, जिसे

चिन्मात्राता भी कहा जाता है। निरंतर और सचेतन जप से, मंत्र की प्राणशक्ति, जिसे मंत्र वीर्य कहा जाता है, साधक में स्फूरण, स्पंदित तेज या यह स्मरण विकसित करती है कि वह कोई और नहीं, बल्कि स्वयं शिव हैं। मंत्र के सूक्ष्म शरीर को विद्या या स्वयं शिव कहा गया है। यह सूत्र कहता है कि व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि मंत्र का रहस्य उसके विद्या शरीर या ज्ञान-शरीर में निहित है। मंत्र कोई यांत्रिक उच्चारण नहीं है। यह वास्तविकता का स्पंदन है।

विद्या का अर्थ है सर्वोच्च वास्तविकता, अद्वैतवाद का ज्ञान। शरीरम् का अर्थ है अपना स्वयं का रूप या सार। अतः, विद्या शरीरम् का अर्थ शब्दों का समूह भी है। सत्ता का अर्थ है प्रकाशमान सत्ता या पूर्ण अहम् - चेतना या संपूर्ण ब्रह्मांड से पूर्ण अभेद। यह मंत्र में मंत्र-वीर्य के रूप में निहित है, जो मंत्र की प्राणशक्ति है। मंत्र शरीरम् शब्दों का समूह या मातृका का विस्तार है, संस्कृत वर्णमाला की पचास शक्तियाँ बीजतत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं। तंत्र सद्भाव कहता है कि सर्वोच्च ब्रह्मा से लेकर निम्नतम भुवन (संसार) तक ब्रह्मांड की सभी शक्तियाँ, सभी देवताओं और ब्रह्मांडों सहित, मातृका में समाहित हैं। तंत्र सद्भाव कहता है कि मातृका, परा-वाक् का प्रकटीकरण है, जो सर्वोच्च भैरव की शक्ति हैं। इस प्रकार, सूत्र यह भी कहता है कि मातृका विद्या, शुद्ध ज्ञान की शक्ति का शरीर है।

मंत्र एक ब्रह्मांडीय कड़ी या सेतु है जो चित्त (मन) और आत्मा के बीच संचार का मार्ग खोलता है। यह हमें विद्या शरीरम् की प्राणशक्ति तक ले जाता है, जो परम सत्य, शिव है।

4) गर्भे चित्त विकासो विशिष्टो विद्या स्वप्नाः

यहाँ गर्भ का अर्थ आदि अज्ञान या महामाया है। चित्त विकास का अर्थ है सीमित, निम्न और अशुद्ध ज्ञान में या महामाया के गर्भ में तृप्ति। यह केवल एक स्वप्न है या भेद की वस्तुनिष्ठ भावना पर आधारित विचित्र कल्पनाओं से भरी एक भ्रम की स्थिति है। स्पंद कारिका के अनुसार, यह उन्मेष की अवस्था है। एक आध्यात्मिक साधक के लिए, इस अवस्था से एक बिंदु अर्थात भ्रूमध्य या आज्ञा चक्र के बीच प्रकाश, नाद अर्थात विभिन्न प्रकार की अविरल मधुर ध्वनियाँ, रूप अर्थात विभिन्न देवदूत, देवता और सिद्ध, रस अर्थात किसी भी खाद्य पदार्थ के अभाव में भी मुख में एक सुखद स्वाद प्रकट होता है। जब तक शरीर के साथ तादात्म्य की भावना लुप्त नहीं हो जाती, ये अलौकिक अनुभव उसके आध्यात्मिक पथ की प्रगति में बाधा उत्पन्न करते हैं।

चेतना मन की सीमाओं से परे विस्तार कर सकती है। इंद्रिय अनुभव का सामान्य ज्ञान भौतिक जगत के ज्ञात भोगों के क्षेत्र तक ही सीमित है। यदि मन इन मिथ्या छवियों से आच्छादित है, तो साधक अज्ञात को नहीं समझ सकता। इसका अर्थ है कि मिलन अभी भी प्रतीक्षारत है। मन के सुख, दुख और मोह की भौतिक प्रकृति को नष्ट करके व्यापक जागरूकता का उदय होता है। भ्रम या स्वप्नावस्था यह संकेत करती है कि योगी को और अधिक पूर्णता और शांति की आवश्यकता है। ऐसे विक्षेप तब तक हो सकते हैं जब तक कि भौतिक अनुभूतियों से अप्रभावित स्थिरता की स्थिति का अनुभव न हो जाए। आचार्य भट्ट भास्कर का मत है कि यह सूत्र विस्तार से बताता है कि जब योगी चेतना के विस्तार का अनुभव करता है तो वह अज्ञान की निद्रा से कैसे जागता है। आचार्य क्षेमराज का मानना है कि यह सूत्र योगी को चेतावनी देता है, और यह उसे क्षुद्र योगिक शक्तियों के लिए मंत्रों का उपयोग न करने की याद दिलाता है। उसे ऐसे दर्शनों और अनुभवों से अनासक्त रहना चाहिए, बल्कि शिव की पूर्ण सार्वभौमिक चेतना के उदय की खोज करनी चाहिए।

गर्भ महामाया है । इस गर्भ में मन का विस्तार भौतिक लाभ और सुख-सुविधाओं की संतुष्टि या क्षुद्र योगिक शक्तियों की प्राप्ति है। ऐसी संतुष्टि भेद या असंबद्धता के सीमित ज्ञान से उत्पन्न होती है और स्वप्न के समान अवास्तविक होती है। ऐसी संतुष्टि भ्रम के कारण भी उत्पन्न होती है क्योंकि मन अभी भी भौतिक जगत में स्थित है। इसके लिए और शुद्धिकरण की आवश्यकता है।

5) विद्या समुत्थाने स्वाभाविके खेचरी शिवावस्था

शुद्ध ज्ञान, जिसे स्वयं के स्वभाव का प्रकाश कहा जाता है, ध्यान की उच्च अवस्था में योगी पर प्रकट होता है। यह

विद्या समुत्थान है, शुद्ध ज्ञान का जागरण। यह ज्ञान हमारे स्वभाव में सहज रूप से निहित है। यह हमारी स्वयं-प्रकाश अवस्था है और पहले से ही विद्यमान है। यह कोई अवतरण नहीं है, बल्कि माया के कंचुकों द्वारा छिपाई गई और विस्मृत की गई बातों का स्मरण है। इस प्रकार, सूत्र इसे स्वभाविका, हमारी स्वाभाविक अवस्था के रूप में वर्णित करता है। इसे यहाँ खेचरी, अर्थात् सर्वोच्च आकाश में विचरण करते हुए वर्णित किया गया है। खेचर का अर्थ है आकाश में विचरण करने वाला। इस संदर्भ में, यह उच्च आध्यात्मिक स्तरों को संदर्भित करता है। निस्संदेह, चेतना के आकाश को समग्रता के मार्ग का अनुसरण करना है जिसे कुलमार्ग कहा जाता है। इसे शिवावस्था, अर्थात् शिव की अवस्था के रूप में जाना जाता है। इसे उस चिंतनशील तल्लीनता के रूप में समझा जा सकता है जो व्यक्ति के अपने वास्तविक स्वरूप में प्रवेश करती है।

परम ज्ञान के उदय होने पर, योगी चेतना के एक विशाल असीमित विस्तार, वास्तविकता की सर्वोच्च अवस्था का अनुभव करता है। खेचरी इस विशालता में एक गति है। जब स्वयं का यह विस्तार असीमित विशाल वास्तविकता में होता है, तभी इसे खेचरी कहते हैं। इसे शारीरिक करतब नहीं समझना चाहिए। कुलचूड़ामणि इस अवस्था को सर्वोच्च भैरव की अवस्था कहती हैं। यह परा-विद्या का उदय है, शुद्ध व्यक्तिपरक ज्ञान का उदय।

6) गुरुरुपायः

गुरु साधन है। यहाँ, गुरु चेतना की शक्ति है। इसे शाम्भवी शक्ति कहा जाता है जो सदैव कृपालु रहती है। इसके माध्यम से भक्त परम आत्मा को प्राप्त करता है। गुरु वे हैं जो शिष्यों के अज्ञान के अंधकार को दूर करते हैं। वे चेतना की व्यापक एकता को प्रकट करते हैं। शिव स्वयं गुरु और शिष्य रूप धारण करते हैं। उनके बीच संवाद हमेशा आंतरिक चेतना के क्षेत्र में होता है।

गुरु वह है जो सारभूत सत्य की शिक्षा देता है। वह शिष्य को मंत्र और मुद्रा की शक्ति की प्राप्ति हेतु मार्ग प्रशस्त करने का साधन है। मालिनी विजया में, शिव कहते हैं कि जो सभी आवश्यक सिद्धांतों को जानता है और जो मंत्रों की प्रभावकारिता पर प्रकाश डालने में सक्षम है, वह स्वयं के समान गुरु है। वह भवसागर रूपी अथाह सागर को पार करने में नौका का कार्य करता है। गुरु को ईश्वरीय कृपा की शक्ति कहा गया है। समस्त शक्ति गुरु की कृपा में निहित है। आध्यात्मिक परिवर्तन के लिए किसी भी शिक्षा को निष्क्रिय रूप से स्वीकार करने से कहीं अधिक की आवश्यकता होती है। दीक्षा प्रायः शक्तिशाली शक्तिपात के बाद दी जाती है। गुरु की शिक्षा को व्यक्तिगत साधना में अनुभव करना आवश्यक है। तभी स्वेच्छापूर्वक स्वीकृति प्राप्त होगी। कभी-कभी, शिक्षा के अनुभव के लिए गुरु के हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, गुरु की कृपा आनंद के धाम की प्राप्ति हेतु कार्य करती है। गुरु अंतर्मुखी मन में आध्यात्मिकता के बीज बोते हैं, और वे आंतरिक प्रकाश का अनुभव करने के लिए कार्य करते हैं। शिव गुरु की कृपा से कार्य करते हैं। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि गुरु ही साधन है।

7) मात्रिका चक्र संबोधाः

गुरु की कृपा होने पर मात्रिका चक्र जागृत होता है। मंत्र जागृत होता है ,जिससे सिद्धि प्राप्त होती है। मात्रिका चक्र संस्कृत अक्षरों का समूह है। संबोधि पूर्ण जागरूकता है। मात्रिका चक्र, जो सभी बीज तत्त्वों का समूह है, की पूर्ण जागरूकता गुरु की कृपा से शिष्य पर अवतरित होती है।

कहा जाता है कि सृजित चेतना से तीन अक्षर उत्पन्न होते हैं। वे हैं:

1) "अ" जिसे ध्रुव या अनुत्तर कहते हैं

2) "इ" जिसे इच्छा कहते हैं और

3) "उ" जिसे उन्मेष कहते हैं

इस त्रय से कई अन्य अक्षर उत्पन्न होते हैं।

"क" से "स" तक के अक्षर शिव की विसर्ग नामक रचनात्मक ऊर्जा द्वारा निर्मित होते हैं। विसर्ग ऊर्जा का बाह्य प्रवाह है। विसर्ग पाँच प्रकार से प्रकट होता है। एक बाह्य है, ब्रह्मांड के विस्तार के रूप में और अन्य हृदय में, कंठ में नाद के रूप में बिंदु के रूप में और ब्रह्मरंध्र में प्रकट होते हैं। इस प्रकार, यह हृदय से ब्रह्मरंध्र तक, हजार पंखुड़ियों वाले कमल के केंद्र तक व्याप्त है। प्रारंभिक अक्षर "अ" और अंतिम अक्षर "ह", अर्थात अहम्-चेतना से रहित मंत्र शरद ऋतु के बादलों के समान हैं। वे वर्षा नहीं करते और इसलिए उन्हें निरर्थक कहा जाता है।

कुल एक ऐसी अवस्था है जिसमें शिव और शक्ति अविभाज्य एकता में रहते हैं। अकुल शिव की अवस्था है, अविभाजित। अक्षुब्ध या अविचलित वह अवस्था है जहाँ इच्छा शक्ति ने बाह्य रूप से प्रकट होने का निर्णय लिया है लेकिन अभी तक प्रकट नहीं हुई है। इस प्रकार, कोई वस्तुनिष्ठता नहीं है। क्षुब्ध वह अवस्था जहाँ इच्छा शक्ति रंगीन अभिव्यक्ति में बदल जाती है, या वस्तुनिष्ठता अस्तित्व में आती है। अक्षुब्ध और क्षुब्ध उन्मेष या अभिव्यक्ति की अवस्थाएँ हैं।

स्वर केवल ध्वनियों के रूप में सुने जाते हैं। उन्होंने अभी तक कोई अर्थ उत्पन्न नहीं किया है। बिंदु का अर्थ ज्ञाता भी है। वेत्ति इति बिन्दुः । यह अपरिवर्तनीय विषय को इंगित करता है। विसर्ग के दो बिंदुओं में, ऊपरी बिंदु शिव को इंगित करता है, और निचला बिंदु शक्ति को इंगित करता है। वे एक अंतर के साथ पूर्ण एकता में हैं। शक्ति के दृष्टिकोण से, निचला बिंदु बाहरी दुनिया का विस्तार है। वहीं, शिव के दृष्टिकोण से, ऊपरी बिंदु - संपूर्ण ब्रह्मांड शिव चेतना में स्थित है।

व्यंजनों वाचक के रूप में पाँच अक्षरों के प्रत्येक समूह में तत्वों का एक संगत समूह होता है। इन्हें षडध्व कहा जाता है। कहा जाता है कि ब्रह्मांड में मंत्र, पाद, व्यक्तिपरक पक्ष पर वाचक और वस्तुनिष्ठ पक्ष में काल, तत्व और भुवन।

"हं" शिव की विसर्ग शक्ति का एक रूप है। अपने सूक्ष्म रूप में यह सभी प्राणियों के हृदय में निरंतर गूंजती रहती है। यह एक सहज और निरंतर ध्वनि है। इसे अनाहत या अविराम कहा जाता है। यह प्राण का स्रोत है।कूट का अर्थ है सर्वोच्च, सबसे उत्कृष्ट या रहस्यमय। कूट बीज "क्ष" अक्षर को दिया गया नाम है।

अभिव्यक्ति में वाचक और वाच्य शामिल हैं। वाचक व्यक्तिपरक पक्ष पर है और वाच्य वस्तुनिष्ठ पक्ष पर। हमारी गतिविधियाँ वाचक या शब्दों में होती हैं। वाचक मात्रिका से बना है। जब तक मात्रिका के रहस्य को नहीं समझा जाता, हम वास्तविक अर्थ नहीं समझ सकते और बंधन में ही रहते हैं। यदि इसे ठीक से समझा जाए तो यह हमें मुक्तिदाता के रूप में कार्य करती है। शाक्तोपाय मुख्यतः मंत्र से संबंधित है और मंत्र में अक्षर या मातृकाएँ होती हैं।

इस प्रकार, यह सूत्र संबोध पर बल देता है, अर्थात मात्रिका चक्र की पूर्ण अनुभूति या अक्षर ध्वनि के गूढ़ अर्थ को समझना। यह कहता है कि सभी अक्षर परा-वाच्य की अभिव्यक्ति मात्र हैं, जो स्पंद या सर्वोच्च रचनात्मक चेतना का स्पंदन है। मात्रिका चक्र को शक्ति कुंडलिनी कहा जाता है। उचित अनुभूति मात्रिका की उचित समझ की ओर ले जाती है, और यह साधक को सर्वोच्च वास्तविकता का प्रदान करती है।

8) शरीरम् हविः

शरीर ही आहुति है। चैतन्य मंत्र के प्रस्फुटित होने पर, अग्नि की लपटों की तरह, आत्म-चेतना का जागरण होगा। इस अग्नि में आहुति के रूप में शरीर अपने स्थूल भौतिक बंधनों का परित्याग कर एक दिव्य शरीर में परिवर्तित हो जाता है। भौतिक बंधनों का कारण बनने वाली ब्रह्मांडीय अशुद्धि नष्ट हो जाती है और परिणामस्वरूप वह परम चेतना के शरीर में परिवर्तित हो जाता है।आचार्य क्षेमराज के अनुसार, भौतिक शरीर को आहुति के रूप में अर्पित करने का अर्थ है, उसके साथ मिथ्या तादात्म्य का परित्याग। यह सीमांत स्थितियों पर विजय प्राप्त करना है। परम चेतना की अग्नि में शरीर को आहुति के रूप में अर्पित करने से, स्थूल शरीर से जुड़ी सीमांत स्थितियाँ लुप्त हो जाएँगी। शरीर विस्तारित चेतना का स्रोत, दिव्य का एक साधन बन जाएगा। शरीर पर केंद्रित व्यक्तिपरकता लुप्त हो जाएगी। विज्ञान भैरव तंत्र के अनुसार, शरीर को आहुति के रूप में अर्पित करने का अर्थ है कि व्यक्ति को सीमित व्यक्तिपरक चेतना,

उसके तत्वों, इंद्रियों और उनके विषयों के साथ-साथ मन को भी शाश्वत चेतना की ज्वाला में समर्पित कर देना चाहिए। तब, सीमित व्यक्तिगत पहचान के बंधन स्वतः ही समाप्त हो जाएँगे और परम चेतना प्रकाशित होगी। यह सूत्र कहता है कि आध्यात्मिक साधना हवन के समान है।

आध्यात्मिक साधन में, स्थूल शरीर और मन से जुड़े विचारों, इच्छाओं और भावनाओं को दबाया या नियंत्रित किया जा सकता है। लेकिन इससे परम चेतना प्राप्त करने का हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में सीमित व्यक्तिपरकता पूरी तरह से समाप्त नहीं होगी और दमित या नियंत्रित विचारों, इच्छाओं और भावनाओं के पुनः प्रकट होने या पुनः प्रज्वलित होने की संभावना हमेशा बनी रहती है। ऐसी सीमित परिस्थितियाँ स्वयं को शिव चेतना में स्थापित करने के मार्ग में आती हैं। हमें असीम शिव चेतना प्राप्त करने के लिए ऐसी सभी सीमित प्रवृत्तियों को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा। यह केवल परम चेतना के अवतरण के साथ ही होता है जो व्यक्तिगत अहम्-चेतना को अपने में समाहित कर लेती है। ऐसी स्थिति में, व्यक्तिपरक सीमित चेतना का कोई निशान नहीं रहेगा और शाश्वत परम चेतना चमक उठेगी। वैयक्तिक आत्मनिष्ठता समाप्त हो जाती है और साधक शिव में ही स्थित रहता है। वह शिव के हाथ में एक यंत्र है। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि स्थूल शरीर यानि अहंकार की भावना ही आहुति या अर्पण है।

9) ज्ञानम् अन्नम्

इधर ज्ञानम् का अर्थ है परम का ज्ञान।आचार्य क्षेमराज के अनुसार, योगी की चिंतनशील चेतना ही उसका भोजन है। भोजन का अर्थ है वह वस्तु जो भूख को तृप्त करती है। यहाँ, भूख शिव की खोज है। एक बार योगी परम चेतना प्राप्त कर लेता है, तो फिर किसी भी चीज़ की खोज नहीं रहती और न ही कोई ऐसी चीज़ बची रहती है जो वांछनीय हो। वह पूरी तरह से संतुष्ट हो जाता है। जैसे भोजन भूख को तृप्त करता है, वैसे ही ईश्वर का ज्ञान योगी को अंतःकरण तक तृप्त करता है। परम चेतना की खोज यहीं समाप्त होती है। यहाँ, अमृत अवस्था को सूत्र के अर्थ के रूप में वर्णित किया गया है।

आचार्य क्षेमराज इस सूत्र की एक अन्य प्रकार से भी व्याख्या करते हैं। इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि योगी विचार-संरचनाओं, अनुभूतियों, भेदों, गति और काल से युक्त समस्त बद्ध ज्ञान को भोजन के रूप में ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार भौतिक शरीर से जुड़ी सीमाओं का कोई चिह्न शेष नहीं रहता। यह सब उसका भोजन है, इस अर्थ में वह इसे शिव चेतना के अपने ज्ञान में समाहित और पचा लेता है। यहाँ, आत्मनिष्ठता की सीमाओं को अमृत अवस्था प्राप्त करने के लिए ग्रहण किए जाने वाले भोजन के रूप में वर्णित किया गया है।

आचार्य भट्ट भास्कर के अनुसार, परम ज्ञान साधारण ज्ञान के विनाश से उत्पन्न होता है। मन एक अद्भुत यंत्र है जो महान सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति में सक्षम है। यह असीम शक्ति का भी यंत्र है, बेशर्त इसे ईश्वर की इच्छा में रूपांतरित कर दिया जाए। शिव चेतना के अवतरण के लिए मन को एक रिक्त पात्र बनना होगा। इसे संचित भौतिक मल से मुक्त किया जाना चाहिए। वेआचार्य क्षेमराज की व्याख्या से सहमत हैं।

10) विद्यासंहारे तदुत्थ स्वप्न दर्शनम्

आचार्य भट्ट भास्कर ने अपनी वार्तिक में व्याख्या की है कि जब व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार होने पर सामान्य ज्ञान विलीन हो जाता है, तो विषयों का पूर्व-अनुभूत भ्रांतिपूर्ण ज्ञान स्वप्न की तरह स्मरण रहता है। ज्ञानोदय की अवस्था को "प्रबुद्धता वृत्ति" कहा जाता है। यह सभी बंधनों से सम्पूर्ण मुक्ति है। यह शिव के साथ शाश्वत संतोष या एकत्व है।

C) आणवोपाय के बारे में और आणवोपाय के सूत्र

"आणवोपाय" वह भाग है जो "अणु" अर्थात् सीमित सत्ता से संबंधित है। इस उपाय में बोध की सभी क्षमताओं को स्वयं पर नहीं, बल्कि ध्यान के विशिष्ट विषयों पर केंद्रित करना होता है। इसका अर्थ है कि प्रथम चरण में स्वयं को

वस्तुनिष्ठ सत्ताओं के माध्यम से अनुभव किया जाता है। इसे "क्रियोपाय"भी कहते हैं। यह उपाय उस साधक के लिए है जो मन की निम्न क्षमता से संपन्न है और शरीर तथा उसकी वस्तुनिष्ठ अनुभूतियों में अधिक संलग्न है। अणु, सीमित भौतिक व्यक्तिपरकता वाला बद्ध व्यक्ति, मन, प्राण, शरीर और उपासना के लिए किसी ध्यान-केन्द्रित वस्तु की सहायता से साधना करता है। इसे स्थान प्रकल्पन कहते हैं। तीन स्थान हैं जहाँ मन को स्थिर किया जा सकता है। यह प्राण, शरीर या कोई बाह्य वस्तु हो सकती है जो शुद्ध और दिव्य हो। धीरे-धीरे, व्यक्ति का मन बुद्धि के स्तरों और फिर आत्मा के स्तर तक आरोहण करने लगता है। मन संशयात्मक होता है। निरंतर साधना करने पर, यह एक स्थिर अवस्था (निश्चयात्मक) में बदल जाता है। आगे विस्तार होने पर, यह व्यक्तिपरक आत्मा प्रकृति का अनुभव करने लगता है। इस उपाय में, आध्यात्मिक यात्रा अणु की अवस्था, सीमित मनोवैज्ञानिक और अनुभवजन्य सत्ता से शुरू होती है और स्वयं के मूल सत्य स्वरूप तक पहुँचती है। इस प्रक्रिया में क्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्रिया मंत्र का जप, चुने हुए देवता की पूजा या मूर्ति आदि जैसे किसी वस्तुनिष्ठ रूप की पूजा हो सकती है। यह एक अंतर से शुरू होती है और उन्नत चरणों में, शक्तियों का सामूहिक समूह और सीमित व्यक्तिपरकता परम चेतना में विलीन हो जाती है जिसे "आणव समावेश" कहा जाता है।

"आणवोपाय " दो बातों पर बल देता है। एक है उच्चार, मंत्र का सचेतन उच्चारण और दूसरा, आरोहण के विभिन्न स्तरों से प्राण का संचलन। उच्चार ऊपर की ओर उठाना है, प्राण धारणा या चेतना के क्रमिक प्रकटीकरण को बनाए रखने से संबंधित है। मंत्र का जप धीरे-धीरे स्वाभाविक, अप्रतिबंधित, अकारण ध्वनि या अनाहत नाद में परिणत हो जाता है। भगवत्पाद शंकराचार्य ने अपनी योग तरावली में इस प्रक्रिया को "नादानुसंधान" कहा है, जो नाद में स्थित है। इससे चित्त विलीन हो जाता है और विशुद्ध चैतन्य, चेतना का सर्वोच्च पहलू, प्रकट होता है। इसे व्यष्टि कुंडलिनी कहा जाता है, जो व्यक्तिगत चेतना का समिष्टि कुंडलिनी अर्थात सार्वभौमिक चेतना के साथ मिलन है। यह एक ऐसी अवस्था है जहाँ विषय और वस्तु का भेद मिट जाता है। योग तरावली के अनुसार, जागृति की इस प्रक्रिया के चरण बिंदु या अर्ध मात्रा से शुरू होकर अर्ध चंद्र, रोधिनी, नाद, नादांत, शक्ति, व्यापिनी, समाना के सूक्ष्म केंद्रों से गुजरते हुए अंततः उन्मना अवस्था तक पहुँचता हैं। उन्मना अवस्था में, यह आत्म व्याप्ति और शिव व्याप्ति दोनों होती है। यह शिव चेतना के पारलौकिकता और अन्तर्निहितता, दोनों की अवस्था है।

करण एक ऐसी तकनीक है जो आध्यात्मिक जागृति के लिए स्थूल, सूक्ष्म और नैमित्तिक शरीरों का उपयोग करती है। इस तकनीक के सात प्रकार हैं। वे हैं ग्राह्य, ग्राहक, चित् या संवित्ति, निवेश या संनिवेश, व्याप्ति, त्याग और आक्षेप। पहले अभ्यास में ग्राह्य को ग्राहक या इंद्रियों में आत्मस्थता करना शामिल है। अगला चरण उन्हें चित् या संवित्ति में आत्मस्थता करना है। तीसरा चरण ग्राह्य को पूरी तरह से चित् में स्थापित करना है। फिर यह चौथे चरण में परिणत होता है जिसे निवेश या संनिवेश के रूप में जाना जाता है। संनिवेश में, किसी भी बाहरी वस्तु का कोई निशान नहीं होगा। यह आत्म व्याप्ति है। योगी को लगता है कि पूरा ब्रह्मांड उसकी आभास के अलावा कुछ नहीं है। फिर यह चरण शिव चेतना के अवतरण की ओर ले जाता है, जिसे शिव व्याप्ति कहा जाता है। योगी को लगता है कि वह स्वयं शिव के अलावा और कोई नहीं है। एक बार यह ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं है। इसे त्याग कहा जाता है। आक्षेप सार्वभौमिक चेतना का एक चरण है।

1) आत्मा चित्तम्

मन या चित्तम् सदैव इंद्रिय विषयों की तृप्ति हेतु विभिन्न इच्छाओं से रंगा रहता है। यह सदैव उनकी प्राप्ति की क्रिया में लगा रहता है। इस प्रकार, चित्त विचार-संरचनाओं, इच्छाओं और उनकी प्राप्ति की क्रिया का निर्माण करता है। एक सीमित और बद्ध व्यक्ति के स्तर पर, इसे आत्मा माना जाता है। इसका अर्थ है कि एक बद्ध व्यक्ति के मामले में, चेतना का क्षेत्र बाह्य दिशा में निर्देशित होता है।

2) ज्ञानं बंधः

सीमित और अनुभवजन्य ज्ञान से बंध कर, अणु या जीव एक देहान्तरणीय अस्तित्व की ओर अग्रसर होता है। वह बंधन के कारण सुख और दुःख का अनुभव करता है। वह भेदों और भिन्नताओं तक सीमित रहता है और सार्वभौमिक चेतना को समझने में असमर्थ होता है। यह पशुत्व, बंधन की अवस्था है। सूत्र कहता है कि सार्वभौमिक चेतना का अनुभव करने की क्षमता में बाधाओं का मूल कारण इंद्रियों के प्रति इच्छा या आसक्ति है। यह एक बंधन बन रहा है।

3) कलादीनाम तत्वानाम अविवेकम माया

कला को व्यक्ति की सीमित क्रिया शक्ति कहा जाता है। अविवेक अशुद्ध ज्ञान है। जो ज्ञान अपरा या वस्तुनिष्ठ है, वह अशुद्ध है और एक सीमित अवस्था है। यह पृथक है, आत्मा से पृथक। ज्ञान, जो परा है, परम का प्रत्यक्ष बोध है। यह आत्म व्याप्ति और शिव व्याप्ति का व्यक्तिपरक अनुभव है। यह अपृथक या आत्मा का स्वरूप है। माया हमारे वास्तविक स्वरूप के प्रति हमारे अज्ञान का ही विस्तार है। तंत्र सद्भाव के अनुसार, कला व्यक्ति को सीमित प्रभावकारिता या कर्तापन की स्थिति में ला देता है। वह राग, इच्छा, से भावनात्मक रूप से जुड़ा होता है और इच्छा की पूर्ति के लिए इंद्रियों की गतिविधि में लिप्त रहता है। इस प्रकार, माया का बंधन उत्पन्न होता है क्योंकि व्यक्ति अपनी शाश्वत व्यक्तिपरक प्रकृति की उपेक्षा करते हुए बाह्य या वस्तुनिष्ठ रूप से मुड़ जाता है। इसे माया शक्ति या माया तत्व या माया ग्रंथि कहा जाता है। जब तक यह गाँठ नहीं खुलती, तब तक व्यक्ति बंधन से मुक्त नहीं होता है। माया शक्ति शिव के स्वातंत्र्य, उनकी पूर्ण स्वतंत्र इच्छा का एक रूप है। यह अनेक रूपों में प्रकट होने की शक्ति है। सीमित व्यक्ति के स्तर पर, यह आत्म-चेतना की जड़ता है। कला, विद्या, राग आदि जो माया के कंचुक या आवरण हैं, जिस के कारण सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर और भौतिक अनुभूतियाँ आदि व्यक्ति द्वारा आत्मा के रूप में अनुभव की जाती हैं। इससे जन्म और पुनर्जन्म के माध्यम से अनंत आवागमन होता है। इस प्रकार माया द्वारा उत्पन्न ज्ञान एक बंधन है। यह अशुद्ध ज्ञान है।

4) शरीर संहारः कलानाम

शरीर का अर्थ है पाँच महाभूतों से बना स्थूल शरीर, तन्मात्रा, मनस, बुद्धि और अहंकार से युक्त सूक्ष्म शरीर शामिल है। विज्ञान भैरव तंत्र कहता है कि व्यक्ति को स्थूल शरीर से सूक्ष्म और सूक्ष्म से परा (सर्वोत्तम) शरीर का तब तक क्रमिक चिंतन करना चाहिए जब तक कि मन पूर्णतः विलीन न हो जाए। जब शिव की उन्मना शक्ति सभी बाधाओं और सीमाओं को अपने में समाहित कर स्वयं को प्रकट करती है, तो उस आध्यात्मिक अवस्था को 'समाना' कहा जाता है। इसका अर्थ है कि मन उच्चतर स्तरों पर विद्यमान है। मन का विलयन ही लय है। बंधन की गांठें एक-एक करके खुलती जाती हैं। जैसे-जैसे इंद्रियों, भावनाओं और निम्न मानसिक अवस्थाओं पर प्रभुत्व प्राप्त होता है, निम्न प्रवृत्तियों के प्रति प्रतिक्रिया करने की क्षमता भी क्षीण होने लगती है। मन एकत्व की एकीकृत अवस्था में पुनः लीन हो जाता है। जो शेष रहता है वह शुद्ध जागृत चेतना का शरीर है। आचार्य भट्ट भास्कर कहते हैं कि अस्तित्व के अनेकता सिद्धांतों की विविधता को धीरे-धीरे एक साथ मिलाया जा सकता है (परोदय) या यह एक ही पारलौकिकता (उल्लंघन वृत्ति) के रूप में भी हो सकता है। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि सभी सीमित परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने के कारण, शरीर भौतिक स्तरों से हट जाएगा। यह शिव के हाथों में एक यंत्र के रूप में कार्य करेगा। केवल शिव चेतना ही प्रबल होगी।

5) मोहावरणात सिद्धिः

मोह वह है जो मोहित करता है। योगिक शक्तियाँ आध्यात्मिक साधना के निम्न स्तरों पर उत्पन्न होती हैं। इस अवस्था में योगी अभी भी सापेक्ष भेदों का बोध कर रहा होगा। वह अभी भी माया के क्षेत्र में है। योगी ऐसी योगिक शक्तियों से मोहित नहीं होनी चाहिए। वह पूर्णता तभी प्राप्त करता है जब वह सचेतन रूप से ऐसे आकर्षणों से परे चला जाता है। इन्हें मोह कहा गया है, जो हमारे मूल स्वभाव को प्राप्त करने में बाधक हैं। ये शिव चेतना तक पहुँचने में बाधक हैं।

मोह अज्ञान का मूल कारण है और जब इस कारण का निराकरण हो जाता है, तो सत्य का प्रकाश चमकता है और यह साधक के हृदय और मन को प्रकाशित करता है। आचार्य भट्ट भास्कर कहते हैं कि योगिक शक्तियों की प्राप्ति अपरा सिद्धि और शिवत्व की प्राप्ति परा सिद्धि है। आचार्य क्षेमराज के अनुसार, ये योगिक शक्तियाँ गौण महत्व की हैं। चूँकि इनमें अज्ञान का अवशेष होता है, इसलिए इसके बढ़ने की गुंजाइश होती है, और इनमें विनाश करने की शक्ति होती है। इसलिए योगिक शक्तियों के प्रति सावधान रहना चाहिए। मोह आवरण, मोह की सीमाओं को पार करने पर ही शिव चेतना प्राप्त होती है।

6) मोहज्जयात अनंत भोगात सहज विद्याजयः

भ्रम पर विजय प्राप्त करके और अनंत विस्तार द्वारा, योगी सहज ज्ञान प्राप्त करता है। कश्मीरी शैव दर्शन के अनुसार, इस शुद्ध सहज ज्ञान को रुद्र प्रमता या अनंत भट्टारक कहा जाता है। जब योगी सहज प्रकाश की संपदा प्राप्त कर लेता है, तो शाश्वत और अविचल आनंद व्याप्त हो जाता है, जिसे अनंत भोग कहा जाता है। यह हमारा वास्तविक और स्वयंप्रकाश स्वरूप है जिसे सहज कहा जाता है। यह ज्ञान सहज विद्या है। इसे आत्म व्याप्ति कहा जाता है। यहाँ, आत्म अपनी शुद्ध चेतना में स्थापित होती है। आध्यात्मिक यात्रा का अगला चरण उन्मना, मानस से परे की अवस्था होगी। जब आत्म शिवत्व की अवस्था में प्रवेश करती है, तो उसे शिव व्याप्ति कहा जाता है। व्यक्तिगत या व्यक्तिपरकता का कोई निशान नहीं होगा। यह शिव चेतना का शाश्वत प्रसार है। मन, संकल्प-विकल्प, विचार-रचनाएँ और वस्तुनिष्ठ इंद्रिय बोध का शासन समाप्त हो जाता है। शुद्ध दिव्य चेतना प्रकाशित होती है। यह तटहीन आनंद, परमानंद की एक व्यक्तिपरक अवस्था है। आचार्य क्षेमराज, स्वछंद तंत्र के आधार पर, समाना और उन्मना, अर्थात् आत्म व्याप्ति और शिव व्याप्ति, इन दो अवस्थाओं में भेद के बारे में बतातें हैं। इस स्तर पर ज्ञान चेतना का आंतरिक गुण है और इसलिए इसे सहज कहा जाता है।

7) जाग्रत द्वितीयकरः

जागृति चेतना की दूसरी किरण है। शुद्ध विद्या और उसके साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त करने के बाद, योगी सदैव जागृत (जाग्रत) हो जाता है। सामान्यतः, हम इंद्रिय बोध के अनुभव को जाग्रत अवस्था समझते हैं। लेकिन इस जाग्रत को नित्य जागृत या सदैव जागृत अवस्था, कहा जा सकता है। किसी भी स्वप्न या भ्रम की स्थिति का अस्तित्व नहीं रहता। यह शाश्वत वास्तविकता की अवस्था है। विज्ञान भैरव तंत्र कहता है कि चेतना ही सबका आधार है। जब कोई चेतना की अवस्था में विलीन हो जाता है, तो उसके भीतर भैरव का पूर्ण रूप प्रकट होता है। द्वैत भाव पूर्णतः लुप्त हो जाता है और उसे ऐसा अनुभव होता है कि यह सम्पूर्ण जगत उसका ही प्रतिबिंब है, और वह कोई और नहीं, बल्कि शिव ही हैं। यही वास्तविक जाग्रत या जागृति है।

8) नर्तकः आत्मा

आत्मा नर्तक है। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में कहा गया है कि जिसने सहज विद्या प्राप्त कर ली है और उन्मना अवस्था तक पहुँच गया है, वह किसी वन या गुफा में नहीं जाता, बल्कि ब्रह्मांडीय नाटक में अपनी भूमिका स्वीकार करता है और जीवन के कर्तव्यों का पालन करता है। जिस प्रकार एक अभिनेता नाटक में अपनी भूमिका निभाता है, वह ईश्वरीय पटकथा के अनुसार अपनी भूमिका निभाता है। वह किसी आसक्ति या इच्छा से न तो प्रभावित होता है और न ही मोहित होता है। अपनी भौतिक गतिविधियों के बावजूद, वह शिव चेतना में दृढ़ता से स्थित रहता है। वह ब्रह्मांडीय लय पर नृत्य करने वाले नर्तक के समान है। शिव एक ब्रह्मांडीय नर्तक हैं। एक हाथ में वे डमरू धारण करते हैं, जो आदि ध्वनि, सृष्टि का स्रोत, उत्पन्न करता है। दूसरी ओर, वे ज्वाला का एक गोला धारण करते हैं जो विनाश, रूपांतरण और पुनर्जनन की ऊर्जा का प्रतीक है। शिव की तरह, शिव-चेतना प्राप्त योगी, यद्यपि संसार में ही रहता है, फिर भी शिव के साथ उसका मिलन अविचलित रहता है। उसके लिए कोई पतन नहीं होता। वह अपनी सांसारिक लीला को

ईश्वर के एक यंत्र की तरह संचालित करता है। माया की किसी भी सीमा का कोई चिह्न नहीं रहता। वह शिव में स्थित रहता है और अनंत की धुन पर नृत्य करता है।

9) रंगो अंतरात्मा

मंच अंतरात्मा है। अंतरात्मा ही मंच का निर्माण करती है। एक मंच या अखाड़े की आवश्यकता होती है जहाँ नर्तक प्रदर्शन कर सके। हम एक ही भौतिक धरातल पर रह सकते हैं, लेकिन हम में से प्रत्येक अपने-अपने अलग मनोवैज्ञानिक धरातल पर रहते है। इस प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति की अंतरात्मा एक अलग मंच पर अपनी भूमिका निभाती है। यह मंच व्यक्ति के लिए विशिष्ट होता है। दिव्य जगत कारण का वह धरातल है जहाँ से मूल पदार्थ की उत्पत्ति होती है। प्रत्यक्ष जगत प्रभावों का वह धरातल है जहाँ मूल पदार्थ भौतिक होता है और वस्तुनिष्ठता ग्रहण करता है। कार्य-कारण संबंध भगवान शिव को नहीं बाँधता। उन्हीं के कारण कार्य-कारण संबंध अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर कायम रहते हैं। द्रष्टा, बोध की प्रक्रिया और द्रष्टा मिलकर एक त्रय बनाते हैं। इस त्रय के प्रत्येक तत्व में गुण या विशेषताएँ प्रतीत हो सकती हैं। लेकिन साक्षात्कारी के लिए, ये तीनों घटक एक ही अन्तर्निहित सार्वभौमिक चेतना के अंग हैं। ऐसी जागरूकता नर्तक, के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार करती है। संपूर्ण मनो-भौतिक व्यूह मूलतः शिव का ही प्रकटीकरण है। उनकी इच्छा के बिना, सब कुछ अस्तित्व में नहीं आ सकता बल्कि पूर्ण विलीन अवस्था में रह जायेगा। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि हमारा आंतरिक व्यष्टि आत्मा ही वह मंच है जिस पर दिव्य अभिनय घटित होता है।

10) प्रेक्षाकानि इंद्रियाणि

इसका अर्थ है कि इंद्रियाँ दर्शक बन जाती हैं। जब योगी की चेतना पूर्णतः जागृत होती है, तो इंद्रियाँ चेतना द्वारा अनुप्राणित होकर अपना कार्य करती हैं। इंद्रियाँ अपने आप कार्य करती हैं, सीमित मन द्वारा शासित और , केवल तभी जब विषय-वस्तु का विभाजन होता है। चूँकि विषय-वस्तु का कोई विभाजन नहीं होता, सीमित मन का कोई चिह्न नहीं होता, इसलिए वस्तुनिष्ठ बोध समाप्त हो जाता है। एक सामान्य व्यक्ति की इंद्रियाँ बहिर्मुखी होती हैं और व्यक्ति को भौतिक सुखों की ओर खींचती हैं। उन्मना अवस्था प्राप्त योगी की इंद्रियाँ अंतर्मुखी होती हैं और उसे शाश्वत कर्ता का गौरव प्रदान करती हैं। योगी शाश्वतत्व के अमृत का आनंद लेता है क्योंकि रूपांतरित इंद्रियाँ उसे अबाधित दिव्य आनंद से भर देती हैं। वे भौतिक जीवन के क्षेत्र में दर्शक बन जाती हैं। वे "अन्तर्निहित चेतना की आँखें और कान" हैं। कश्मीरी शैव धर्म इसे अभेद प्रथा (अभेद प्रथा) कहता है, जो सर्वोच्च सार्वभौमिक आत्मा या शिव के साथ एकत्व का अनुभव है।

11) धिवसत सत्त्व सिद्धिः

सत्त्व एक शुद्ध अवस्था है। अन्य सभी गुण सत्त्व में विलीन हो जाते हैं। यह शुद्ध अवस्था प्रबुद्ध बुद्धि की शक्ति से प्राप्त होती है। जब इंद्रियों की क्रियाशीलता चेतना में स्थापित हो जाती है, तो वे बाह्य सुखों के बजाय चेतना के वास्तविक स्वरूप का बोध करने लगती हैं। इसे प्रबुद्ध बुद्धि कहा जाता है क्योंकि मन, जो सदैव शंकालु रहता है, अब निश्चल अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। यह शुद्ध बुद्धि है क्योंकि यह सत्य का बोध करती है। यह धिवसत है, बुद्धि का प्रकाश। यह अवस्था योगी को परम बोध की ओर ले जाती है। ऐसा कहा जाता है कि सभी जीव, सभी तत्व, सभी मंत्र और बीज तत्व उस व्यक्ति के नियंत्रण में होते हैं जिसने स्वयं को शिव से अभिन्न जान लिया है। इसका अर्थ है योगी स्वातंत्र्य शक्ति या पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करता है। कश्मीरी शैव दर्शन में इसे काली, शिव की पूर्ण और बिना शर्तवाली स्वतंत्रता कहा जाता है। जब यह शक्ति प्रकट होती है, तो इसे सिद्धि, शिव की सर्वोच्च प्राप्ति कहा जाता है।

12) सिद्धः स्वतन्त्र भावः

जब पिछली सूक्ति में वर्णित अवस्था प्राप्त हो जाती है, तो योगी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। यह पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति है, माँ काली की शक्ति का प्रकटीकरण है। सहज या जन्मजात आत्म की क्षमता अभिव्यक्ति का आधार है और सृष्टिकर्ता से लेकर पृथ्वी तक सभी को नियंत्रित करती है। यह अपने संपर्क में आने वाली हर चीज़ को शिवत्व में

रूपांतरित कर देती है। यह विकास और अंतर्वेशन का भी बिंदु है। यद्यपि योगी चेतना की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमानता का अनुभव करता है, फिर भी उसकी व्यक्तिगत चेतना बनी रहती है। कश्मीरी शैव दर्शन इसे आत्म व्याप्ति, स्वयं का विस्तार कहता है।

13) बीजावधानम्

बीज ब्रह्मांड का स्रोत है। यह चेतना या पराशक्ति का सक्रिय प्रकाश है। वह सभी देवताओं, ब्रह्मांड और भौतिक सृष्टि की जननी है। योगी अपना सक्रिय ध्यान परा-शक्ति, मूल प्रकृति की ओर निर्देशित करता हैं। इस प्रकार, वह अपना ध्यान स्वयं की वास्तविक प्रकृति और अभिव्यक्ति की ओर निर्देशित करता है। इसे अक्सर सतर्क दिमाग कहा जाता है।आचार्य क्षेमराज इसे चित्तवधानम् के रूप में संदर्भित करते हैं, जो सर्वोच्च चेतना में मन का निरंतर अवशोषण है। इसे सहज समाधि भी कहा जा सकता है।

14) आसनस्थः सुखं हृदे निमज्जति

आराम से बैठने पर, योगी सहजता से चेतना की झील में डूब जाता है। इस सन्दर्भ में बैठने का अर्थ है सृष्टि के मूल तत्व परा की शक्ति को स्थापित करना। यहां योगी को किसी सहारे की जरूरत नहीं होता। वह निरालाम्ब हैं. यह सौन्दर्यपरक आनंद की स्थिति है। उनका आसन और सर्वोच्च आधार चेतना की सर्वोच्च शक्ति है जिसे पराशाक्तबल कहा जाता है। यहाँ ध्यान और चिंतनशील तल्लीनता का परित्याग कर दिया जाता है। ये स्वतः ही घटित होते हैं। इस प्रकार, योगी को निरालंकृत कहा जाता है, बिना किसी वस्तुनिष्ठ आधार के। कश्मीरी शैव दर्शन इसे निरभास अवस्था कहता है। यहाँ कोई चिंतन नहीं होता। योगी शिव के साथ पूर्ण एकता में विलीन हो जाता है।

15) स्वमात्रा निर्माणम आपादयति

योगी अपनी इच्छानुसार वस्तुओं और प्राणियों का निर्माण करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। वह अपनी स्वतंत्र इच्छा के अनुसार संसार का निर्माण कर सकता है। कश्मीरी शैव दर्शन के अनुसार, यह कालीमाँ की शक्ति है। पुराणों में, हम इस महान शक्ति को महाऋषि विश्वामित्र में पूर्ण रूप से देखते हैं। जब इंद्र ने त्रिशंकु के स्वर्ग में प्रवेश को अस्वीकार कर दिया, तो उन्होंने त्रिशंकु के लिए एक समानांतर स्वर्ग का निर्माण किया। लेकिन आजकल ऐसी सिद्धि और ऐसे संतों के बारे में सुनने को नहीं मिलता। स्वमात्र का अर्थ है अपनी चेतना से संबंधित। चेतना के स्तर के अनुसार, योगी अपनी इच्छानुसार वस्तुओं या प्राणियों के रूप उत्पन्न कर सकता है। शिव, पराशक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता से प्रतिष्ठित और धन्य होकर, उसकी शक्ति सभी सीमाओं से परे हो जाती है। वह अपनी शक्ति को विषयों और वस्तुओं में रूपांतरित करने और नई दुनियाओं की रचना करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। यह शिव की स्वातंत्र्य शक्ति है। लेकिन यह ईश्वर की इच्छा के अनुसार होता है क्योंकि इस स्तर पर सीमा या शर्त अब क्रियाशील नहीं रहेगी और न ही सीमित व्यक्तित्व का कोई निशान बना रहेगा। वह शिव की पूर्ण स्वतंत्र इच्छा की शक्ति से लीन हो जाता है। निर्माणम् या सृजन शब्द भौतिक तल पर वस्तुओं, विचारों और गतिविधियों पर भी लागू होता है। योगी सृजन की शक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार आत्मसाक्षात्कारी देवताओं और देवों के स्तर तक आरोहण कर सकता है। निर्माणम् या सृजन भौतिक और सूक्ष्म तत्वों पर भी लागू होता है।

16) विद्या विनाशे जन्म विनाशः

जब इंद्रियों और मन का सीमित ज्ञान रूपांतरित होकर आंतरिक चेतना में स्थित हो जाता है और योगी इस प्रकार शुद्ध विद्या में स्थित हो जाता है, तो दूसरे जन्म की संभावना पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। मृत्यु तंत्र में कहा गया है कि जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लेता है और जो तीनों तत्त्वों के बंधन से मुक्त हो जाता है, और जो शाश्वत, अपरिवर्तनशील और स्थायी सत्य में स्थित हो जाता है, उसका फिर कभी जन्म नहीं होता।

17) कवर्गादिषु महेश्वर्याद्याः पशु मातरः

यह सूत्र मात्रिका चक्र में व्यंजनों के पहलुओं की बात करता है। समस्त सृष्टि के स्रोत शिव की शक्ति या शिव की

बिना शर्तवाली और पूर्ण स्वतंत्रता है। यह स्वातंत्र्य है। बीज और योनि के विभाजन से यह दो प्रकार की होती है। मात्रिका में स्वरों को बीज माना जाता है। "क" वर्ग और अन्य वर्ग, अर्थात् व्यंजन, उसे योनि कहा जाता है। इस संदर्भ में बीज को शिव और योनि को शक्ति कहा जाता है।

व्यंजनों के आठ वर्ग माहेश्वरी से शुरू होकर आठ मातृकाओं या मातृ देवताओं से जुड़े हैं। वर्णमाला अक्षरों की माला है जो इन मातृ देवताओं की किरणें हैं। व्यंजनों के आठ वर्गों की अध्यक्षता करने वाली देवताओं की आठ शक्तियाँ आत्मा को ऊपर उठा सकती हैं या आकांक्षी को निम्नतर स्तरों पर गिरा भी सकती हैं। दिव्य खोज के लिए, उन्हें अघोर शक्तियाँ कहा जाता है। वे शक्तियाँ जो हमें शिव को प्रदान करती हैं। वे आकांक्षी को निम्न स्तरों पर भी गिरा सकती हैं जब आकांक्षी निम्न इरादों के साथ भौतिक सुखों के लिए उनके पास जाता है। उस स्थिति में, उन्हें घोर और घोरातार कहा जाता है। ये शक्तियाँ उस योगी के लिए मुक्ति का साधन बनती हैं जो पवित्रता का प्रतीक है और शुद्ध विद्या की आकांक्षा रखता है, तथा जो अन्य लोग भौतिक लाभ के लिए उनके पास आते हैं, उनके लिए ये बंधन का साधन बनती हैं।

18) त्रिषु चतुर्धम तिलावत् असेच्यम्

त्रिषु का अर्थ है जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की तीन अवस्थाएँ। चतुर्धम का अर्थ है तुरीय की चौथी अवस्था। क्रमिक साधना में, चौथी अवस्था धीरे-धीरे अन्य तीन अवस्थाओं में प्रवेश करती है। एक स्तर पर तुरीय अवस्था अन्य सभी अवस्थाओं में व्याप्त हो जाती है। यह चौथी अवस्था आत्म-चेतना की स्वाभाविक अवस्था है। जैसे-जैसे तुरीय अवस्था अन्य तीनों अवस्थाओं में व्याप्त होती है, योगी निरंतर शुद्ध ज्ञान में स्थित होता है। यह अवधूत अवस्था है।

19) मग्नाः स्वचित्तेन प्रविशेत

शरीर और प्राण के विचार को समाप्त करके, योगी आंतरिक आत्मा, अहम्-चेतना में प्रवेश करता है। यह स्वच्छित प्रवेश है। इसे चित्त मग्ना भी कहा जाता है। यह मन की किसी भी विचार संरचना से रहित जागरूकता की अवस्था है। विज्ञान भैरव तंत्र कहता है कि जब मनस, चेतना, शक्ति और आत्मा परम चेतना में विलीन हो जाते हैं, तो व्यक्ति भैरव का मूल स्वरूप प्राप्त कर लेता है। यह पूर्ण मौन या बिना किसी व्याकुलता के स्थिरता की अवस्था है। यह वह अवस्था है जिसमें वास्तविकता का उदय होता है। भगवत्पाद शंकराचार्य ने अपने दक्षिणा मूर्ति स्तोत्र में कहा है, "मौन प्रकटित परब्रह्म तत्वम, युवानम।" इसका अर्थ है कि प्रत्यक्ष बोध की वास्तविक और पूर्ण शिक्षा इसी अवस्था में होती है। यह समय सीमा से परे है। इसलिए, यहाँ शिव को युवानम, सदा युवा के रूप में वर्णित किया गया है। इस तल पर समय का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। कश्मीर शैववाद इस आत्म-विस्तार को भैरव वृत्ति के रूप में वर्णित करता है। यह एक ऐसी अवस्था है जहाँ मंत्र सर्वोच्च रूप से सक्रिय होता है। आचार्य क्षेमराज इस संदर्भ में ज्ञानगर्भ स्तोत्र का उदाहरण देते हैं, जो इस अवस्था को उस परम लोक के रूप में वर्णित करता है जो अमरता का आनंदमय अमृत प्रदान करता है।

20) प्राण समाचरे समदर्शनम्

जब प्राण एकरूपता से गति करता है, तो व्यक्ति को सभी का समान दर्शन होता है। प्राण को सर्वोच्च अनुनाद, परानाद कहा जाता है। यह परानाद अक्षरों, शब्दों और अनुभवजन्य व्यक्तियों में प्रवेश करता है। इन सभी में प्राण की उपस्थिति को समदर्शनम् कहा जाता है। समाचार का अर्थ है आंतरिक प्रकृति पर दृढ़ पकड़। समदर्शन का अर्थ है सब कुछ को आनंद या दिव्य चेतना के एक पुंज के रूप में अनुभव करना। आनंद भैरव तंत्र कहता है कि इस संदर्भ में प्राण भौतिक श्वास का नहीं, बल्कि कुंडलिनी की जीवन शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जो रीढ़ के आधार से ऊपर उठती है, मेरुदंड के चारों ओर घूमती है और सुषुम्ना, मध्य नाड़ी तक पहुँचती है। तब साधक "तुरीय चेतना" का आनंद लेता है। जब प्राण एकरूपता से गति करता है, तो योगी को यह बोध होता है कि मंत्र, चेतना और व्यक्तिगत आत्मा एक ही चेतना के प्रतिबिंब हैं।

21) मध्ये वर प्रसवः

मंत्र का उच्चारण तीन भागों में होता है, अर्थात् आरंभ, मध्य और अंत। मंत्र उच्चारण के आरंभ और अंत में भगवान का शक्तियुक्त शाक्त स्वभाव स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। आरंभ में यह सूक्ष्म अभिव्यक्ति है और अंत में यह अंतर्वलन है। सृष्टि का बिंदु और विलय का बिंदु एक ही है, शिव चेतना की अवस्था। अंतर्वलन केवल उनका प्रतिबिंब है।
आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि आत्मज्ञान की प्रक्रिया में मन सदैव एक संभावित बाधा है। जब तुरीय अवस्था का पहली बार अनुभव होता है, तो भौतिक सुखों की अन्य अवस्थाओं का अतिव्यापन हो सकता है। यह एक विकृति है। यह तब तक जारी रहता है जब तक कि एक ऐसी अवस्था प्राप्त नहीं हो जाती जहाँ अवशोषण पूर्ण हो जाता है, मन के संस्कार समाप्त हो जाते हैं। मन की परस्पर क्रिया रुक जाती है। एक विचार के लुप्त होने और दूसरे विचार के प्रवेश करने के बीच एक संक्षिप्त क्षण होता है। इस संक्षिप्त क्षण को मौन का बीज कहा जाता है। यह दो विचारों, प्राण की दो क्रियाओं या मंत्र के दो पाठों के बीच की अवस्था है। इस मौन पर ध्यान केंद्रित करना है। धीरे-धीरे मौन का यह क्षण या स्थिरता का बीज आनंद की एक सतत अवस्था में विस्तारित होता है। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि सचेतन साधना द्वारा, बहिर्गामी और अंतर्गामी विचारों के बीच स्थित मौन का बीज विस्तारित होता है और साधक को पूर्ण और शाश्वत स्थिरता की अवस्था प्रदान करता है।

22) मात्रा स्वप्रत्यय संधाने नः तस्य पुनरुत्थानम्

जो कुछ भी आँखों से देखा जाता है, जो कुछ भी शब्द द्वारा चेतना का विषय बनता है, जो कुछ भी मन सोचता है, जो कुछ भी बुद्धि निश्चित करती है, जो कुछ भी चेतना के विषय के रूप में विद्यमान है या जो कुछ भी अनुभवजन्य अहम्-चेतना के अंतर्गत आता है - यह सब कल्पना का विषय है। चेतना के प्रकाश, शिव की इन सभी अवस्थाओं में गहनता से जाँच करनी चाहिए। यदि सब कुछ शिव के रूप में देखा जाता है, तो मन और कहाँ जा सकता है। ऐसे योगी के लिए, सब कुछ शिव की अभिव्यक्ति प्रतीत होता है। माया के आवरण के कारण धुँधली हुई दिव्य चेतना अब पुनर्जीवित हो जाती है। यह अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव है। शिव चेतना की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करने से चेतना की उच्चतर अवस्था पुनः प्राप्त होती है। एक बार यह अवस्था प्राप्त हो जाने पर, न तो कोई भौतिक आसक्ति रहेगी और न ही वे पुनः उत्पन्न हो सकती हैं।

23) शिव तुल्यो जायते

अब साधक परम भगवान शिव के समान हो जाता है।आचार्य क्षेमराज इस अवस्था का वर्णन तुरीयातीत के रूप में कहते हैं। योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। यद्यपि योगी इस जीवन में मुक्त हो जाता है, फिर भी वह तब तक देह-अस्तित्व से जुड़ा रहता है जब तक कि कर्म के अंतिम अंश भी पूरी तरह से मिट नहीं जाती। कालिका क्रम में कहा गया है कि बिना किसी विचार-रचना के चिंतन होना चाहिए। यह तुरीयातीत अवस्था की ओर ले जाता है जिसे जीवनमुक्त कहा जाता है। यह शिव-समान अवस्था है।

24) शरीरवृत्तिर व्रतं

योगी जो शिव के समान है, वह इस चेतना के साथ विद्यमान रहता है कि "मैं शिव हूँ।" प्रारब्ध के पूर्णतः समाप्त होने तक शरीर में रहकर, वह अपने जीवन को एक पवित्र कर्म, व्रतम् के रूप में व्यतीत करता है। कभी-कभी, योगी मानवता को प्रबुद्ध करने और उसकी सेवा करने के लिए एक महानतम बलिदान के रूप में भौतिक शरीर में अपना जीवन जारी रखता है। ऐसी भौतिकता योगी के लिए कोई बंधन नहीं; यह एक दिव्य, भगवान की अनुज्ञा या दायित्व है।

25) कथा जपः

कालिकाक्रम कहते हैं कि परम चेतना में स्थित योगी सभी देवताओं से श्रेष्ठ है। ऐसे योगी का प्रत्येक शब्द सर्वोच्च मंत्र के समान होता है और प्रत्येक शब्द जप या प्रार्थना के उच्चारण के समान होता है। कश्मीरी शैव धर्म इसे शक्ति का

प्रवर्तन, शाक्तोच्चार कहता है। ऐसे योगी का प्रत्येक शब्द एक शक्ति संपुट है। भगवत्पाद शंकराचार्य ने अपने शिवानंदलहरी में कहा है, "यद्यत कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।" ऐसे योगी का प्रत्येक कार्य भगवान शिव की पूजा का एक रूप माना जाता है।

26) दानम् आत्म ज्ञानम्

आत्म ज्ञानम् स्वयं की, चेतना की प्राप्ति है। दानम् एक उपहार है। यह सूत्र कहता है कि पूर्ण तत्व उपहार के रूप में दिया जाता है। इसका अर्थ है कि शिव से ब्रह्मांड का भेद मिट जाता है, यह स्वयं का शुद्ध पूर्ण ज्ञान है। साधक द्वारा अर्जित शिव चेतना अविचलित रहती है। यह बोध साधकों तक इस ज्ञान का प्रसार करता है। ऐसे सिद्ध पुरुष और उनकी वंशावली कुलाचार का आधार बनती है। उनमें शक्तिपात प्रदान करने की शक्ति होती है। यहाँ तक कि उनके दर्शन, स्पर्श या आशीर्वाद भी साधकों के अवरुद्ध केंद्रों को खोलकर अत्यधिक आध्यात्मिक प्रगति प्रदान करते हैं। इस प्रकार, यह सूत्र कहता है कि योगी को सर्वोच्च ज्ञान शिव द्वारा प्रदान किया जाता है, और वे इस ज्ञान को आध्यात्मिक साधकों पर उपहार के रूप में प्रदान करते हैं।

27) यो अविपस्थो ज्ञानहेतुश्च

"अवि" का अर्थ है पशु। "प" का अर्थ है रक्षक। अतः, अविप का अर्थ है पशुओं का रक्षक। महेश्वरी जैसी देवताओं ही सीमित व्यक्तियों की देखभाल करते हैं। यह मात्रिका के आठ वर्गों के आठ देवताओं को संदर्भित करता है जिन्हें पशु-माताः कहा जाता है, जो अनुभवजन्य व्यक्तियों की माताएँ हैं। "यो अविपस्थः" का अर्थ है इस प्रकार विराजमान शक्तियाँ। ज्ञानहेतु का अर्थ है बुद्धि या ज्ञान का स्रोत। आत्म-ज्ञान के सूत्रधार के रूप में सिद्ध योगी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। योगी मात्रिका के ऊर्जा चक्र का स्वामी और अभिकर्ता बन जाता है, वह उन पर नियंत्रण रखता है या मातृका में विराजमान होकर वह अपने अनुयायी साधक को मंत्र सिद्धि प्रदान कर सकता है। योगी साधक को सद्यः सिद्धि, अर्थात् तत्काल प्राप्ति का आशीर्वाद देने में सक्षम होता है।

28) स्वशक्ति प्रचयो अस्य विश्वम्

योगी को यह बोध होता है कि संपूर्ण ब्रह्मांड शिव की शक्ति का समुच्चय है। शास्त्रों में कहा गया है कि संपूर्ण ब्रह्मांड शिव की शक्ति है। ब्रह्मांड प्रचय है, चेतना का विस्तार है। यह चेतना ही है जो शिव के प्रतिबिंब के रूप में आकार और आकृतियाँ धारण करती है। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। वह विषय और अविषय दोनों है। संपूर्ण अभिव्यक्ति शिव की पूर्ण स्वतंत्र इच्छा की लीला है। यह शिव व्याप्ति है।

29) सृष्टि लयौ

सृष्टि अभिव्यक्ति का सृजन और रखरखाव है। लय का अर्थ है पूर्ण चेतना में विश्राम। अभिव्यक्ति अपनी संभावित चेतना अवस्था में वापस लौटने के लिए बाध्य है। वही चेतन प्रकृति अपनी स्वतंत्र इच्छा से अभिव्यक्ति की स्थिरता और लीनता को स्वतंत्र रूप से लाती है। शिव की चेतना में स्थित योगी अपनी स्वतंत्र इच्छा, शक्ति की परस्पर क्रिया का बोध करता है। सृजन और अंतर्वेशन दोनों को शाश्वत आनंद की लीला के रूप में अनुभव किया जाएगा।

30) तत् प्रवृत्तिवाप्यनिरासः समवेत्रभावात

एक के बाद एक घटित होने वाले प्रकटीकरण के पालन और संहार का साक्षी होने पर भी, योगी की सार्वभौमिक चेतना में कोई व्यवधान नहीं होगा। आंतरिक प्रकृति की वास्तविकता, सार्वभौमिक चेतना, जो सर्वज्ञता का आधार है, इस स्थिति में कोई कमी नहीं होगी। यह सूत्र शक्ति के पंच कृत्यों, शिव की स्वतंत्र इच्छा, अर्थात् सृजन, स्थायित्व, संहार, लीनता और अनुग्रह, का उल्लेख करता है। योगी बिना किसी विक्षोभ के अपने शिवत्व को धारण करता है। वह सदोदिता की अवस्था में रहता है, जो सार्वभौमिक चेतना में सर्वदा विद्यमान है। यह सच्चे आत्म का अविनाशी स्वरूप है।

31) सुखदुःखयोर् बहिर्मननम्

योगी की सुख और दुःख की अनुभूतियाँ बाह्य हैं। सुख को आनंद वृत्ति के रूप में परिभाषित किया गया है और दुःख को दयनीय अवस्था की अनुभूति के रूप में। न तो दुःख और न ही सुख, एक सिद्ध योगी को उसके वास्तविक स्वरूप की अवस्था से विमुख कर सकते हैं। उसकी आत्मनिष्ठ जागरूकता (अहंता) अविचलित रहती है। एक बार जब योगी अपनी पहचान में स्थापित हो जाता है, तो सूक्ष्म शरीर (पुर्यष्टक) अहम्, इंद्रिय का अनन्य क्षेत्र नहीं रह जाता। सुख और दुःख की अनुभूतियाँ, विचार और भावनाएँ जो सुख और दुःख का कारण बनती हैं, योगी को आंतरिक रूप से अनुभव नहीं होतीं। सुख 'राग' के कारण होता है, जो किसी चीज़ के प्रति आकर्षण या व्यक्तिगत रुचि है। दुःख 'द्वेष' के कारण होता है, जो किसी चीज़ से विकर्षण है। शिव चेतना में स्थापित होने पर योगी इन दोनों अवस्थाओं से ऊपर उठ जाता है। अतः, सिद्ध योगी में सुख और दुःख के अनुपस्थित हैं। चेतन अवस्था सुख और दुःख के प्रभाव से परे होती है।

32) तद्विमुक्ता अस्तु केवली

केवली का अर्थ है वह जिसका ज्ञान विशुद्ध चेतना पर आधारित है। इस सूत्र में तत का अर्थ सुख और दुःख है। 'विमुक्त' का अर्थ है वह जो सुख और दुःख के अवशेष अंशों से भी पूर्णतः मुक्त या अछूता है। कालिका क्रम के अनुसार, सुख और दुःख की अधिकता से द्वैत का भ्रम उत्पन्न होता है। वह योगी जो सुख और दुःख के किसी भी अंश से अछूता रहता है, केवली कहलाता है, जो शुद्ध चेतना का ज्ञाता है। उसके लिए द्वैत के भ्रम या बद्ध व्यक्तिपरक अनुभव के लिए कोई स्थान नहीं है।

33) मोह प्रतिसंहतस्तु कर्मात्मा

मोह एक भ्रम है। यह हमारे वास्तविक स्वरूप के विस्मृति के कारण उत्पन्न भौतिक सुखों की इच्छा है। 'मोह प्रतिसंहत:' का अर्थ है भ्रम का एक साधन समूह बन जाना। इस भ्रम के कारण, व्यक्ति कर्म के चक्र में बाँधा जाता है। कार्य-कारण संबंध क्रियान्वित होता है। यह कर्म, अपने फलस्वरूप, सुख और दुःख लाता है। जब तक व्यक्ति माया से बाँधा रहता है, वह बंधन में रहता है और जन्म-पुनर्जन्म के अंतहीन चक्र में फँसता रहता है। यही 'कर्मात्मा' का अर्थ है। मूर्खता, जड़ता, अज्ञानता,अंधकार, विवेक का अभाव और चेतना का लोप या वास्तविक स्वरूप का विस्मृति, ये सभी भ्रम की अभिव्यक्तियाँ हैं। ये भौतिक खोज के कारण बनते हैं और आत्मा को कर्म में, जो उद्देश्य पूर्ति के लिए एक क्रिया है, घसीटते हैं। इस प्रकार, व्यक्ति कर्म और उसके परिणामों के चक्र में बाँधा जाता है। यही सुख और दुःख का स्रोत बन जाता है। मोह व्यक्ति को पूरी तरह से शरीर से तादात्म्य करा देता है और इस प्रकार, कर्म के प्रभाव का अनिवार्य परिणाम जन्मों का शाश्वत चक्र है। इस प्रकार, इस सूत्र में बंधी हुई आत्मा को कर्मात्मा कहा गया है। इस प्रकार मन के संस्कारों द्वारा ईश्वर का ध्यान बाधित होता है। इस प्रकार, मोह से बाँधी हुई, जीवात्मा अपने स्वरूप को भूलकर कर्ममय प्राणी बन जाती है।

34) भेद तिरस्कारे सर्गान्तर कर्मत्वम्

जब भेद समाप्त हो जाता है, तो वही कर्म दूसरी सृष्टि को जन्म देता है। यहाँ, इस स्तर पर कर्म माया के बंधनों से मुक्त है। व्यक्ति शिव के हाथ में एक यंत्र मात्र है। जब यह भेद, जो सभी द्वैतों का मूल है, कट जाता है, तो सार्वभौमिक चेतना का उदय होता है। मंत्र अब साधक का शरीर है। मंत्र चैतन्य उसके अस्तित्व में स्पंदित होता है। इसे मंत्र चैतन्य का प्रकटीकरण भी कहा जाता है। मंत्र के देवता, मंत्रेश्वर और परम भगवान शिव, मंत्र महेश्वर, साधक के लिए वास्तविकता को प्रकट करते हैं। मंत्र चैतन्य और मंत्रेश्वर तथा मंत्र महेश्वर की कृपा, व्यक्ति को आशीर्वाद देती है और साधक की चेतना शाश्वत शिव चेतना में विस्तारित होती है। यह आत्म व्याप्ति और शिव व्याप्ति दोनों है। इसे शुद्ध विद्या, शुद्ध ज्ञान कहा जाता है।

शाम्भव जप में, साधक को प्रकाश और विमर्श के संधि बिंदु पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। शाक्त जप में, साधक को प्रमाण और प्रमेय के संधि बिंदु पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। आणव जप में, साधक को प्राण और अपान के संधि बिंदु पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इस तकनीक में भी पूर्ण मौन या स्थिरता पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता है, लेकिन एकाग्रता के स्तर व्यक्ति की शुद्धता के स्तर के आधार पर भिन्न होते हैं। अंततः सभी ध्यान विधियाँ उसी अवस्था की ओर ले जाती हैं जिसे शाम्भव समाधि कहते हैं, जो पूर्ण मौन, स्थिरता और आनंद का शाश्वत विस्तार है, जिसमें कोई व्याकुलता नहीं होती। आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य शाश्वत शिव चेतना में स्थापित होना और एकत्व में रहना है। यह उच्चतर स्तरों पर की जाने वाली क्रिया है, और यह क्रिया माया के कंचुकों या आवरणों से अप्रभावित रहती है।

35) कारण शक्तिः स्वतोनुभवात

अब योगी अपनी चेतना से प्रत्येक वस्तु के कारण को जान लेता है। अभिव्यक्ति और उसकी गतिशीलता अब उसके लिए कोई रहस्य नहीं रह जाती। उसकी शक्ति अनिर्मित प्राणशक्ति, अव्यक्त शिव से उत्पन्न होती है और इस कारण शक्ति या चेतना की सृजनात्मक ऊर्जा द्वारा, वह भगवान शिव की स्वतंत्र इच्छा के अनुसार किसी भी वस्तु का सृजन करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। सार्वभौमिक नियमों और सिद्धांतों को समझने के लिए, शिव चेतना में पूर्णतः स्थापित होना आवश्यक है। अभिव्यक्ति का कारण माँ काली का स्वरूप स्वतः और निर्बाध रूप से अनुभव किया जाता है। इसे शुद्ध विद्या, शुद्ध ज्ञान या प्रत्यक्ष व्यक्तिपरक बोध कहा जाता है।

36) त्रिपादात अनुप्राणं

अनुप्राणं का अर्थ है स्वयं को जीवंत करना या स्वयं को जीवंत बनाना। सूत्र कहता है कि चेतना की निचली तीन अवस्थाएँ अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, चौथी अवस्था, जो तुरीय है, इस के द्वारा जीवंत होती हैं। यह वह सृजनात्मक सिद्धांत है जहां जागरूकता आंतरिक आत्मा को, भीतर की चमक को स्पर्श करती है। उपनिषद कहता है, "तस्य भासा सर्वं इदं विभाति। यह आत्म व्याप्ति है।आचार्य क्षेमराज का कहना है कि इससे परे की स्थिति तुरियातीत (तुरीयतीत) है जिसे शिव व्याप्ति कहा जाता है। पूरी सृष्टि उस आत्म-प्रकाश में चमकती है। यह आत्म व्याप्ति और शिव व्याप्ति भी है। सृजन की शक्ति और अभिव्यक्ति पर सचेतन नियंत्रण यहीं रहता है।" यह सर्वोच्च चमकमाना जाता है।

37) चित्तस्थितित्वात करचरण बाह्येषु

मन की वही स्थिरता शरीर, इंद्रियों और बाहरी दुनिया में व्याप्त है।आचार्य क्षेमराज का कहना है कि अंतर्मुखी चिंतन (निमीलन) के माध्यम से प्राप्त चेतना तभी पूर्ण होती है जब यह बाहरी दुनिया में एक विस्तार के रूप में जारी होती है जिसे उन्मेष कहा जाता है। उसका शरीर, इन्द्रियाँ, मन तथा बाह्य वातावरण बन जाता है ,उसी आनंद और परमानंद से परिपूर्ण। यह शिष्यों को अनुग्रह प्रदान करता है। जब योगी तुरीय और तुरियातीत अवस्थाओं में निहित सृजनात्मक शक्ति से अनुप्राणित होता है, तो आंतरिक शांति सभी दिशाओं में और सभी प्राणियों तक फैल जाती है।

38) अभिलाषाद बहिर्गतिः संवाह्यस्य

संवाह्य का अर्थ है कर्म में लिप्त या माया के आवरणों से प्रभावित होना। चेतना के गहरे स्तरों को छूने के बाद भी कभी-कभी बाह्य जगत में कार्य करने की इच्छा बनी रहती है। योगी को हमेशा तुरीय अवस्था की चेतना में कार्य करने की आवश्यकता नहीं होती। अतीत के संस्कार तब तक प्रकट हो सकते हैं जब तक कि कर्म के निशान पूरी तरह से मिट न जाएँ। हालाँकि, मन पर उसका नियंत्रण और उसकी इच्छाशक्ति उसे बहुत सुरक्षा प्रदान करती है ताकि उसके आंतरिक चेतन स्तर प्रभावित न हों। लेकिन वह कर्म की उपस्थिति को जड़ से उखाड़ने के लिए कर्म के परिणामों से गुज़रेगा। एक बार कर्म ऋण चुक जाने पर, कोई शारीरिक चेतना नहीं रहेगी, और आत्मा शिव चेतना में स्थायी रूप से स्थापित हो जाती है।

39) तदारुढ प्रमितेत तत क्षयात जीव संक्षयाः

आरूढ़ प्रमितः का अर्थ है वह योगी जिसका मन उस चौथी अवस्था, तुरीय अवस्था, के बोध पर केंद्रित है। तत् क्षयत् का अर्थ है कामना का अंत। जीव संक्षय का अर्थ है स्थूल और सूक्ष्म शरीर से तादात्म्य का विलोपन। इस प्रकार, सूत्र कहता है कि जब योगी शुद्ध चेतना में स्थित हो जाता है, तो उसकी सभी तृष्णाएँ समाप्त हो जाती हैं और वैयक्तिक आत्मा का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। कोई कर्म बंधन नहीं रहता। इसे निर्वाण या शिव-शक्ति-सामरस्य की अवस्था कहा जाता है। यह चेतना की एक अविभेदित अवस्था है जहाँ विषय-वस्तु द्वैत हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है।

40) भूत कंचुकात् तदा विमुक्तो भूयः प्रतिसमाः परः

भूत कंचुकात् का अर्थ है वे पाँच महाभूत जो शरीर का निर्माण करते हैं और सच्ची अहम्-चेतना को आवृत करते हैं। जो इन तत्वों और आवरणों से मुक्त हो जाता है, वह निर्वाण का भोक्ता बन जाता है। वह पति समाः है, जिसका अर्थ है कि वह पशुपति, भगवान शिव बन जाता है। सीमित परिस्थितियों के लुप्त होने के साथ, उसकी सीमित, बद्ध और अनुभवजन्य पहचान समाप्त हो जाती है। शास्त्र कहता हैं, "पाशा बंधो सदा जीवः, पाशमुक्तो सदाशिवः।" यहीं, सत्य प्रकाशित होता है। सूत्र वर्णन करता है कि यह सर्वोच्च अवस्था, परा है।

41) नैसर्गिकः प्राण संबंधः

नैसर्गिकः का अर्थ है वह जो निसर्ग, प्रकृति से उत्पन्न हुआ है। वाजसनेय संहिता कहती है कि वह दिव्य शक्ति जो सर्वोच्च, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, शुद्ध, शुभ, शक्तियों के समूह की जननी, सर्वोच्च अमर आनंद, महा अघोरेश्वरी और चण्डा (भयानक) है, अभिव्यक्ति और प्रत्याहार दोनों को लाती है। काल बाह्य अभिव्यक्ति और आंतरिक प्रत्याहार का एक कार्य है। समय स्वयं को तीन श्वास नाड़ियों के रूप में अभिव्यक्त करता है, अर्थात् त्रिवहं, जिसका अर्थ है इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों से होकर प्राणवायु का प्रवाह ।अथवा , तीन रूपों में अर्थात् त्रिविधं, जिसका अर्थ है प्रमेय, प्रमाण और प्रमता, जिन्हें प्रतीकात्मक रूप से सोम, सूर्य और अग्नि द्वारा दर्शाया जाता है, और तीन पहलुओं में, अर्थात् त्रिष्टम्, जिसका अर्थ है भूत, वर्तमान और भविष्य, बाह्य समय के रूप में। अभिव्यक्ति के लिए, दिव्य चेतना पहले प्राण में रूपांतरित होती है। इस संदर्भ में प्राण का अर्थ केवल प्राणवायु नहीं, बल्कि सार्वभौमिक जीवन शक्ति है। इस प्रकार, यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के माध्यम से अभिव्यक्ति और परम चेतना के बीच की कड़ी है। यही प्राण और परा के बीच का संबंध है।

42) नासिकांतर मध्य संयमात किमात्रा सव्यापसव्य सौसुप्तेषु

प्राण अपनी पूर्ण जीवन शक्ति में तीन प्रमुख नाड़ियों इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना में प्रवाहित होता है। संयम या गहन आंतरिक जागरूकता द्वारा, यह प्राण शुद्ध जागरूकता की अवस्था में विलीन हो जाता है। सचेतन एकाग्रता का बिंदु, अर्थात् 'नासिकंतर मध्य संयम', तालुमूल या आज्ञा चक्र, भ्रूमध्य स्थित ज्योति पर केंद्रित करना माना जा सकता है। इससे श्वास धीरे-धीरे स्थिर हो जाती है और योगी निर्व्युत्थान समाधि में प्रवेश करता है। इसका अर्थ है परम चेतना में निरंतर स्थित रहना। योगी की सभी बहत्तर हज़ार नाड़ियों से दिव्यता का अमृत प्रवाहित होता है। यह दिव्य अवतरण या महादेव परम शिव भगवन का अवतरण है।

43) भूयास्यात प्रतिमीलनं

प्रतिमीलनं में निमीलनं और उन्मीलनं दोनों सम्मिलित हैं। निमीलनं चेतना की आंतरिक जागरूकता है और उन्मीलनं का अर्थ है चेतना की बाह्य जागरूकता। यह आत्म व्याप्ति और शिव व्याप्ति का संयोजन है। इस बिंदु पर, व्यक्तिगत आत्मा अपनी अभिव्यक्ति की यात्रा पूरी कर लेती है। आत्मा उन्मना अवस्था में पहुँच जाती है जहाँ से आत्मा कभी भौतिक लोकों में वापस नहीं लौटती। यह हमारे वास्तविक स्वरूप का उदय है। यह कैवल्य है। योगी स्वयं शिव हैं, परम महादेव।

निष्कर्ष

भगवान शिव के स्वरूप अत्यंत गहन और रहस्यमय हैं। उनका वास्तविक स्वरूप वस्तुनिष्ठ रूप से जाना नहीं जा सकता क्योंकि यह मन, वाणी, शब्द या विचार संरचनाओं के क्षेत्र में निवास नहीं करता। वे सभी द्वैत से ऊपर हैं। वेद ही मंत्र रूप में शिव की एकमात्र अभिव्यक्ति हैं। शिव वह आध्यात्मिक शक्ति हैं जो वस्तुओं को घुमाती हैं, उन्हें अपने भीतर खींचती हैं और उन्हें उनके मूल स्रोत तक वापस ले जाती हैं। वे ब्रह्मांडीय ध्वनि प्रणव के स्वामी और ब्रह्मांडीय लय, ब्रह्मांडीय संगीत और ब्रह्मांडीय नृत्य के स्रोत हैं। शिव वह महान गुरु हैं जो आध्यात्मिक पथ पर हमारा मार्गदर्शन करते हैं, हमें हमारे जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का एक ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण प्रदान करते हैं, हमें अक्रियाशीलता की ओर ले जाते हैं, हमें सुख-दुःख के अनुभवों से परे ले जाते हैं और हमें साक्षी भाव से रहना सिखाते हैं। शिव केवल बौद्धिक ध्यान या आत्म-विश्लेषण के देवता नहीं हैं। महादेव वह चेतना है जो मन को वापस उसके स्रोत में बदल देती है। शिव हमें मन की पूर्व शर्तों से परे ले जाते हैं, और हमें अनंत का आलिंगन कराते हैं। महादेव वह वास्तविकता है जो सभी स्थान, समय, अभिव्यक्ति और उससे परे व्याप्त है, फिर भी अव्यक्त, अप्रमेय, निराकार,निरंजन , निर्नाम और क्या नहीं ? । शिव एकस्तु केवलः, यदस्ति यन्नास्ति तत सर्वं शिवमयं. इस प्रकार आचार्य वसु गुप्त अपने शिव सूत्रों की सहायता से शिव चेतना की व्याख्या करते हैं।

पुस्तकें संदर्भित

1. आचार्य वसु गुप्त द्वारा लिखित शिव सूत्र
2. आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा शिव सूत्र की व्याख्या
3. त्रिक सार और तंत्र सद्भाव आचार्य क्षेमराज द्वारा लिखित